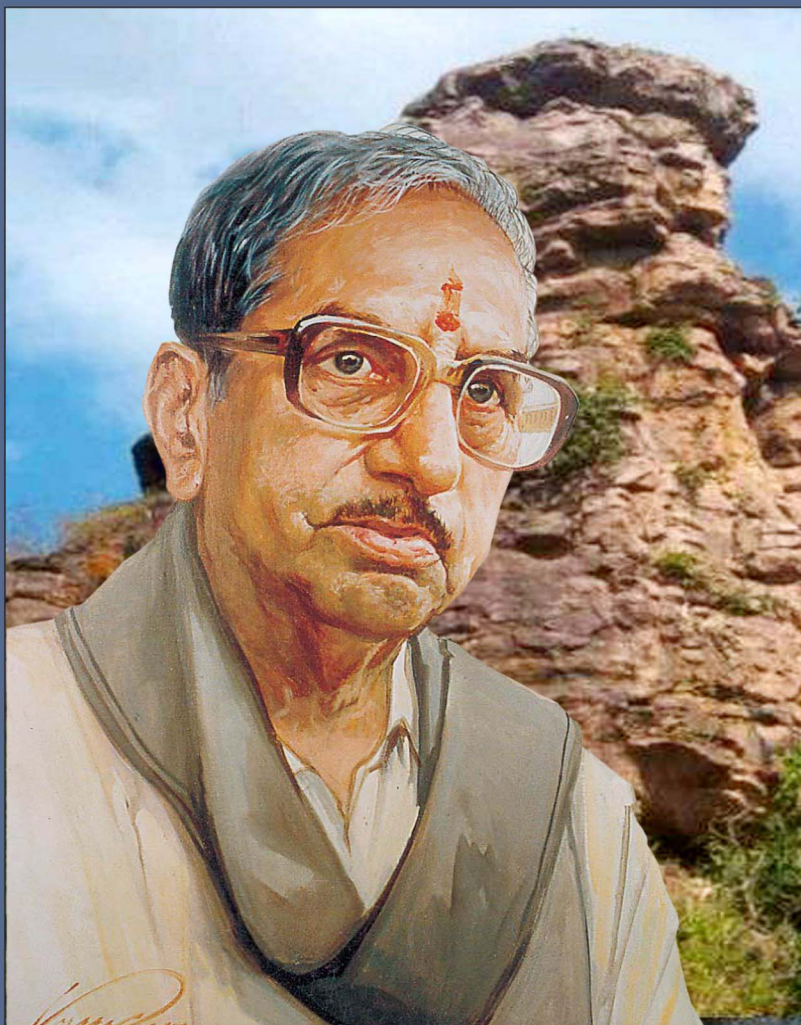




विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
द्वारा सञ्चालित

अखिल भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा

बोधमाला 12



पद्मश्री डॉ० विष्णु श्रीधर (हरिभाऊ) वाकणकर
(4 मई 1919 से 3 अप्रैल 1988)

पद्मश्री डॉ० विष्णु श्रीधर (हरिभाऊ) वाकणकर

डॉ विष्णु श्रीधर (हरिभाऊ) वाकणकर भारत के एक प्रमुख पुरातत्वविद् थे। श्री वाकणकर का जन्म 4 मई 1919 को मध्य प्रदेश के नीमच में हुआ था। वे संस्कार भारती के संस्थापक महामंत्री थे। डॉ० वाकणकर जी ने अपना समस्त जीवन भारत की सांस्कृतिक धरोहरों को सहेजने में अर्पित किया। उन्होंने अपने अथक शोध द्वारा भारत की समृद्ध प्राचीन संस्कृति व सभ्यता से सारे विश्व को अवगत कराया। इन्होंने 'सरस्वती नदी भारतवर्ष में बहती थी', इसकी अपने अन्वेषण में पुष्टि करने के साथ-साथ इस अदृश्य हो गई नदी के बहने का मार्ग भी बताया। इनके शोध के परिणाम सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्यचकित कर देने वाले हैं। आर्य-द्रविड़ आक्रमण सिद्धान्त को झुठलाने वाली सच्चाई से सबको अवगत कराने का महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया। लगभग 50 वर्षों तक जंगलों में पैदल घूमकर विभिन्न प्रकार के हजारों चित्रित शैल चित्र एकत्र किए और उनकी प्रदर्शनी लगाई। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व के क्षेत्र में डॉ० वाकणकर ने अपने बहुविध योगदान से अनेक नये पथ का सूत्रपात किया। 1956 में श्री वाकणकर जब ट्रेन से भोपाल से इटारसी जा रहे थे तो रास्ते में उन्हें कुछ पहाड़ियाँ दिखाई दी। उन्हें लगा की यहाँ जरूर कुछ रोचक छुपा हो सकता है। वे अगले ही स्टेशन पर उतर गए और पैदल चलते हुए उस जगह पर आये। पहली ही गुफा में उन्हें भित्ति चित्र दिखाई पड़े। इनकी कार्बन डेटिंग करने पर ये 50 हजार वर्ष पुराने पाए गए। वहां उन्हें बुद्ध स्तूप भी मिले जो सम्राट अशोक के कारवाँ के रुकने पर बने होंगे। उन्होंने भीम बेटका पर एक शोध पत्र जमा किया। भीमबेटका की उनकी खोज विश्वप्रसिद्ध खोज थी। वे एक अच्छे चित्रकार भी थे। जो भी ऐतिहासिक इमारतें और वस्तुएं उन्हें खनन के दौरान मिलती उनकी हुबहू स्केच बना कर वे संगृहीत करते थे। 1975 में उन्हें पद्मश्री अवार्ड से सम्मानित किया गया। श्री वाकणकर ने ही लुप्त हुई सरस्वती नदी के भूमिगत मार्ग को सेटेलाइट की मदद से खोजा और नई खोजों के अनुसार इन परिणामों को उद्घोषित किया कि भूमि के नीचे 30 से 60 मीटर की गहराई में सरस्वती नदी का पुरातन जलमार्ग विद्यमान है। उन्होंने समर्पित शोधकर्ताओं के एक दल के साथ सरस्वती नदी के किनारे-किनारे एक मास लम्बी सर्वेक्षण यात्रा आरम्भ की, जिसमें पुरातत्वविद्, भूगर्भ विशेषज्ञ, हिमनद विशेषज्ञ, लोक कलाकार और छायाकार सम्मिलित थे। दुर्भाग्यवश डॉ० वाकणकर के असमय निधन से इसमें व्यवधान पड़ गया। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी वह कला-साधना में संलग्न थे। अपनी अनन्त यात्रा के पल में भी उनके हाथ में पेंसिल थी और वह रेखाचित्र बना रहे थे। सन् 1987 में वाकणकर जी के लिए अभिनन्दन-ग्रंथ का प्रकाशन किया गया था। 3 अप्रैल 1988 को वह संसार से विदा हो गए।

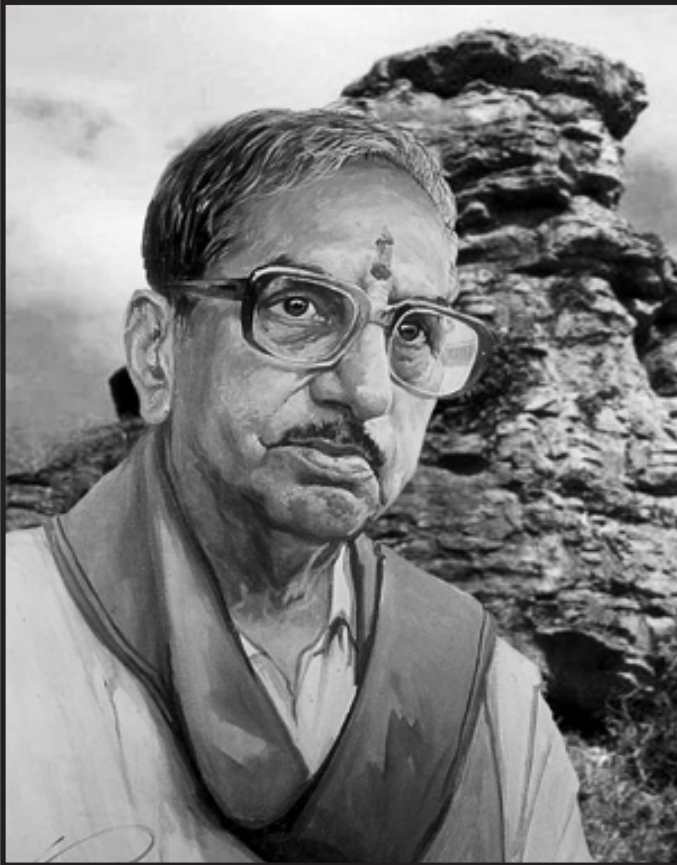


विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान
द्वारा संचालित

अखिल भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा

बोधमाला 12

कक्षा 12 के विद्यार्थियों के लिए अखिल भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा एवं
तरुण वर्ग के प्रश्नमंच हेतु पाठ्य पुस्तक



पद्मश्री डॉ० विष्णु श्रीधर (हरिभाऊ) वाकणकर
(4 मई 1919 से 3 अप्रैल 1988)

निवेदन

विश्व के प्रायः सभी देशों में धर्म, संस्कृति एवं अपनी राष्ट्रीयता का ज्ञान छात्रों को कराना शिक्षा कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है, परन्तु दुर्भाग्यवश धर्म-भूमि भारत में धर्म-संस्कृति की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। पराधीनता के काल में तो धर्म एवं संस्कृति के प्रति अनास्था उत्पन्न करने के योजनाबद्ध प्रयास हुए ही, स्वतंत्रता के पश्चात् भी छात्रों में अपने धर्म, संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के प्रति गौरव भाव जाग्रत करने का प्रभावी प्रयत्न नहीं हुआ। राष्ट्र जीवन की वर्तमान दुरावस्था का यह एक प्रमुख कारण है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की आजकल चर्चा चल रही है, शिक्षा को मूल्यपरक बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, समाज को ज्ञान-विज्ञानमय बनाने का यत्न हो रहा है। किन्तु सर्वप्रथम हमें अपने छात्रों को भावनात्मक दृष्टि से शिक्षित करने तथा अपने शाश्वत धर्म, संस्कृति, नीति एवं राष्ट्रीयता के विचारों को शिक्षा व्यवस्था में प्रमुख स्थान देने की आवश्यकता है। सारा ज्ञान-विज्ञान हमें यूरोप-अमेरिका से प्राप्त हुआ, षड्यन्त्रपूर्वक उत्पन्न की गई इस भ्रामक धारणा से बाहर निकल कर, हमारे पूर्वजों ने ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मानवता के विकास के लिए अद्वितीय योगदान किया है—यह जानकारी अपनी अगली पीढ़ी को देते हुए उनमें गौरवभाव एवं आत्मविश्वास जाग्रत करने की आवश्यकता है।

पृष्ठ सीमा के कारण प्रस्तुत पुस्तिका में विभिन्न विषयों को संक्षिप्त रूप में ही दिया जाना संभव हुआ है। संस्कृति ज्ञान परीक्षा एवं प्रश्नमंच के लिए तो यह पुस्तक उपयोगी है ही, परन्तु अपने राष्ट्र, समाज, संस्कृति, हमारे ऋषि-मनीषी, शौर्यवान पूर्वजों, हमारे श्रद्धा-केन्द्रों, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं की वैज्ञानिकता के प्रति हमारी उत्सुकता के जागरण और उसके समाधान के लिए विभिन्न स्रोतों से उन जानकारीयों को विस्तार से पाने के लिए प्रेरक के रूप में भी सहयोगी होगी। आचार्य बन्धुओं से निवेदन है कि वे इनके सम्बंध में छात्रों को सन्दर्भ सहित और अधिक विस्तार से बतायें ताकि उनमें और गहन अध्ययन करने की प्रेरणा जगे।

सचिव

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है। प्राचीनता के साथ-साथ दूसरी विशेषता अमरता है। अनेक संस्कृतियाँ काल के गाल में समा गईं परन्तु भारतीय संस्कृति हजारों वर्ष तक काल के क्रूर थपेड़े खाती हुई आज भी जीवित है। तीसरी विशेषता है उसका जगद्गुरु होना। भारतीय संस्कृति सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी स्थान रखती है।

भारतीय संस्कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है, जबकि मिस्र, असीरिया, यूनान, रोम की संस्कृतियाँ अपने मूल स्वरूप को विस्मृत कर चुकी हैं। प्राचीन काल में बुद्ध और महावीर, मध्यकाल में शंकराचार्य, रामानन्द, कबीर, रविदास, गुरुनानक, तुलसी और चैतन्य महाप्रभु और आधुनिक काल में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द एवं ज्योतिबा फुले आदि महान आत्माओं द्वारा किए गए प्रयास इस संस्कृति की महत्वपूर्ण धरोहर हैं। भौगोलिक, सामाजिक, भाषायी तथा आर्थिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है फिर भी सांस्कृतिक रूप में एक इकाई है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू-भाग है जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक विस्तृत है। गंगा, यमुना भूमि को उपजाऊ बनाये हुए हैं। भारतीय संस्कृति समाज में नवागत संस्कृतियों की अच्छाइयों को स्वीकार करने में भी संकोच नहीं करती, किन्तु अपनी मूलभूत विशेषताओं को अक्षुण्ण रखते हुए।

भारतीय संस्कृति समन्वयवादी और विश्वव्यापिनी है। स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी कहते हैं, “किसी भी राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो स्वरूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है। विचार, वाणी और क्रिया के जिस रूप को हिन्दू संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है, उसका स्वरूप है वेद, उपनिषदों एवं स्मृति पुराणादि ग्रन्थों में दिए गए आदर्शों के अनुरूप जीवन बनाना।”

अनुक्रमणिका

क्र०	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मातृभूमि भारत : जगती का प्रथम 'राष्ट्र', विश्व से भारत के सम्बन्ध, पुत्ररूप हिन्दू समाज, अखण्ड भारत : विभाजन और कारण।	5
2.	वसुधैव कुटुम्बकम् भारतीय जीवन दृष्टि आध्यात्मिक है, वर्णाश्रम व्यवस्था, भारतीय समाज में नारी का स्थान	21
3.	संस्कारों की पावन परम्परा : त्याग, तप, संयम, सत्य, स्नेह, स्वाभिमान, सद्ग्रन्थ, योग, आचार्य महाप्रज्ञ जी की समाज दृष्टि	31
4.	भारतीय काल गणना : भारतीय इतिहास दृष्टि, संकल्प, यवनारि राजा खारवेल, हूणांतक राजा यशोधर्मा	47
5.	भारतीय विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा : भारतीय गणित, अठारह विद्याएँ एवं चौंसठ कलाएँ	57
6.	सामान्य ज्ञान : पदक एवं पुरस्कार, भारत का राष्ट्रीय खेल 'हॉकी' भारतीय खेल प्राधिकरण (Sports Authority of India), स्कूल गेम्स फेडरेशन ऑफ इंडिया (SGFI), संयुक्त राष्ट्र (United Nations), लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, भारत में सैन्य अकादमियाँ, कुछ प्रमुख युद्धक श्रेष्ठतम आधुनिक युद्धक तकनीकी सामग्रियाँ, साहित्यकार	67
7.	हमारे राष्ट्र नायक : आचार्य श्रीमहाप्रज्ञ, दादा साहब फाल्के, दत्तोपंत ठेंगडी, पंडित रविशंकर, मधुनापंतलु सत्यनारायणशास्त्री, विवेकानन्द शिलास्मारक	76

प्रश्नपत्र का स्वरूप

स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रीय चेतना के अमर उद्घोषक भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने स्वामी रामतीर्थ के भावों की ही अपने शब्दों में अभिव्यक्ति करते हुए कहा था- “भारत जमीन का टुकड़ा नहीं है, जीता जागता राष्ट्र पुरुष है। हिमालय इसका मस्तक है, गौरी शंकर शिखा है, कश्मीर किरीट है, पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं। विंध्याचल कटि है, नर्मदा करधनी है, पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघाएँ हैं। कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके चरण पखारता है। पावस के काले-काले मेघ इसके केश कुन्तल हैं, चांद और सूरज इसकी आरती उतारते हैं। यह वंदन की भूमि है। इसका कंकर-कंकर शंकर है, इसका बिन्दु-बिन्दु गंगाजल है। हम जियेंगे तो इसके लिये और मरेंगे तो इसके लिये।”

मातृभूमि भारत के प्रति अटल जी के ये उद्गार केवल उन्हीं के हृदय से नहीं निकले हैं इस देश को एक भू-खण्ड मात्र न मानते हुए इसे जीवित-जाग्रत, चैतन्य-स्वरूप में अनुभव करने वाले अनेक महापुरुष हैं। स्वामी विवेकानन्द, योगीराज अरविन्द, स्वातन्त्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर और श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ‘श्रीगुरुजी’ जैसे अनेक महापुरुषों ने अपने आध्यात्मिक जीवन के श्रेष्ठ अनुभवों और गहन राष्ट्रीय चिंतन के परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष प्रदान किया कि यह राष्ट्र केवल नदियों-समुद्रों, वनों-पर्वतों, मैदानों-मरुस्थलों का एक समुच्चय मात्र नहीं है बल्कि भौतिक- भौगोलिक स्वरूप से अभिव्यक्त हो सकने वाली दिव्य-चैतन्यमयिता से परिपूर्ण मातृभूमि है।

मातृभूमि माता तो हम कौन? मातृभूमि से अपने संतति रूप के परिप्रेक्ष्य में चिंतन आवश्यक है। कवि मैथिलीशरण गुप्त ‘भारत-भारती’ में कहते हैं-

हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी।

आओ विचारें आज मिलकर ये सब समस्याएँ सभी॥

यह व्यावहारिक सत्य है कि किसी भी देश का प्रथम और स्थूल परिचय उसकी भौगोलिक रचना और सीमाओं से ही अभिव्यक्त होता है। राष्ट्र की भूमि उसका अभिन्न अंग होती है, जिसके अभाव में उस राष्ट्र के अस्तित्व की कल्पना भी असंभव है। तथापि उस पर बसने वाले लोग और वहाँ की संस्कृति भी उतने ही महत्वपूर्ण अंग हैं। इन तीनों से मिलकर ही किसी राष्ट्र का सम्पूर्ण स्वरूप साकार होता है।

भारतीयों में अपने राष्ट्र के स्वरूप को इस समग्रता से समझने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। अथर्ववेद की सूक्ति है, 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (12/1/12) अर्थात् 'भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।' विश्व का सबसे प्राचीन और भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च मान्यता प्राप्त ग्रन्थ ऋग्वेद हमें बताता है 'उप सर्प मातरं भूमिम्' (10/18/10) अर्थात् 'मातृभूमि की सेवा करो।'

पुराण-साहित्य की हमारे राष्ट्र में बहुत लोक-प्रतिष्ठा है। महर्षि वेदव्यास और उनकी शिष्य परम्परा ने भारतीय संस्कृति के स्वरूप को सामान्य लोगों को भी समझने में सुगम एवं रोचक बनाते हुए अठारह पुराणों एवं इतने ही उप-पुराणों की रचना की। इन्हीं में एक प्रमुख पुराण है 'विष्णु पुराण' जिसके एक श्लोक में भारत की भौगोलिक सीमाएँ अर्थात् भूमि और उस पर निवास करने वाले लोगों से सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है—

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

(अंश-2, अध्याय-3, श्लोक-1)

उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र के बीच का भू-भाग 'भारत' है और इस पर जन्मी हुई मानव जाति 'भारती' है, भारतीय हैं। स्पष्टतः 'सन्तति' शब्द प्रयोग द्वारा यहाँ इस आसेतु हिमालय भूमि पर निवास करने वाले हम भारतीयों का भारत से सम्बन्ध माँ एवं पुत्र-पुत्री के रूप में है।

अपना राष्ट्र विश्व के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा प्राकृतिक एवं भौगोलिक वैविध्य के साथ बहुत सुन्दर, सम्पन्न और विलक्षण है। विश्व मानचित्र पर दृष्टि डालें तो ऐसा अन्य कोई राष्ट्र दिखाई देना दुर्लभ ही होगा जो एक साथ अत्यन्त उत्तुंग बर्फ से ढकी विशाल पर्वत मालाओं और मीलों फैले विशाल मरुस्थलों से युक्त हो; जिसकी सीमाएँ एक ओर विराट हिमालय और तीन ओर से सागर द्वारा इस प्रकार परिसीमित हों कि उसे देखकर किसी को भी यह कल्पना करना असंभव न लगे कि यह मनुष्यों द्वारा बसाया गया न होकर स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित है, क्योंकि हिमाचल और सागरों जैसी सीमाएँ तो ईश्वर ही बना सकते हैं। इसीलिए बार्हस्पत्य शास्त्र ने —

हिमालयं समारभ्य यावदिन्दु सरोवरम्।

तं देवनिर्मितं देशं हिन्दुस्थानं प्रचक्षते॥

श्लोक में हिन्दुस्थान को स्पष्टतः 'देवनिर्मित देश' कहा है।

जगती का प्रथम 'राष्ट्र'

साहित्यकार पं. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जब 'यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने' जैसे भाव प्रकट करते हैं तो अपने पूर्व चिंतकों से सहमत होते हैं कि यह भूमि मानवों की 'आदिभूमि' है। किसी सनातन राष्ट्र की निर्मिति का यही लक्षण है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा, "एक समय था जब यूनानी सैन्य की वाहिनियों के संचालन की ध्वनि से धरती काँप जाती थी। यूनान का प्राचीन राष्ट्र संसार के पटल से साफ हो गया, उसकी कथा सुनाने वाला भी कोई शेष नहीं रहा। एक समय था जब स्वामित्व योग्य प्रत्येक वस्तु पर रोम का गरुड़ चिह्न चमकता था, सर्वत्र रोम की शक्ति मानी जाती थी और उसकी सत्ता मनुष्य जाति के सिर पर मँडराती थी, रोम का नाम सुनकर विश्व थर्राता था परन्तु आज कैपिटॉल की पहाड़ी खण्डहर हो चुकी है। जहाँ सीजर राज्य करते थे वहाँ आज मकड़ियाँ जाले बुन रही हैं। ऐसे ही अन्य अनेक राष्ट्र हुए जो आए और गए, उन्होंने विजयोन्मादपूर्ण एवं प्रभुत्व सम्पन्न आततायी राष्ट्र जीवन भोगा और समुद्र की लहरों के समान नष्ट हो गए। इन राष्ट्रों ने मानव इतिहास में नाम पाया है। परन्तु हम जीवित हैं और यदि आज भी मनु महाराज (जिनसे मनुष्य जाति का आरंभ माना जाता है) यहाँ आते हैं तो वह अपने को किसी परायी भूमि पर पाकर हक्का बक्का नहीं होंगे। यहाँ आज भी हजारों वर्षों के चिंतनस्वरूप निर्धारित वे ही विधि-नियम चालू हैं, युगों की सूझबूझ और शतकों के अनुभवों पर आधारित सनातन प्रथाएँ चल रही हैं और जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, विपत्ति के एक के बाद एक आघात उन पर हो रहे हैं, इन आघातों का परिणाम एक ही हो रहा है कि वे अधिकाधिक पुष्ट और दृढ़ हो रहे हैं, और यदि इस सबका केन्द्र, वह हृदय जहाँ से यह रक्त बह रहा है, राष्ट्र जीवन की मुख्य कमानी कहीं है, तो विश्वास करो, मेरा विश्वभर का अनुभव बताता है, कि वह यहीं है।" (Complete works of Swami Vivekananda खण्ड-3, पृष्ठ-106)

हमारा यही इतिहास बोध, सांस्कृतिक गौरव, सनातन विश्वास, अपने पूर्वजों के आदर्श और उनके माध्यम से आज की और आगे भी निरंतर रहने वाली परम्पराएँ, अपनी भूमि से माता और सन्तान के सम्बन्धों जैसी अनन्यता इस भूमि को 'मात्र भूमि' नहीं रहने देती, वह हर भारतीय के लिये 'मातृभूमि' बन जाती है 'भारतमाता' बन जाती है। यह सम्बन्ध सदियों से चले आ रहे 'रक्त-संस्कारों' का परिणाम है।

हमारे इन संस्कारों को सुरक्षित रखने में सबसे बड़ा योगदान है हमारी सत्य सनातन संस्कृति का और श्रेष्ठ ऋषियों-महर्षियों, चिंतकों-विचारकों, पराक्रमी शूरवीरों, उत्कृष्ट कला-साधकों, शिल्पियों, विज्ञानवेत्ताओं, साहित्य सृजकों और ऐसे ही समाज जीवन के विविध क्षेत्रों में मानवोचित उत्कर्ष प्रदान करने वाले अलग-अलग क्षेत्रों में चिंतन-मनन-अध्ययन- अनुसंधान और अनुभवों के आधार पर हजारों वर्षों से निरंतर विकासमान पूर्वज परम्परा का।

यह संस्कृति, यह परंपरा हम सबकी साझा है। इस मातृभूमि में विभिन्न प्रकार की प्रचुर विविधताओं की सौन्दर्यमयी उपस्थिति के साथ यह 'एक राष्ट्र' है। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य ने केरल के कालडी में जन्म लिया और सनातन हिन्दू धर्म का प्रचार करते हुए अन्ततः जिन चार शांकर मठों की स्थापना की उनमें एक शृंगेरी (कर्नाटक), दूसरा गोवर्धन पीठ (पुरी, उड़ीसा), तीसरा शारदामठ (द्वारिका, गुजरात) और चौथा जोशीमठ (उत्तराखण्ड) में हैं। इन प्रांतों की भाषा, वेशभूषा, आहार-विहार-त्यौहार में एकरूपता न होने पर भी एक सांस्कृतिक आधार, धर्म-दर्शन के आधार पर शंकराचार्य ने सारे राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरो दिया।

भाषा, प्रान्त, वेश आदि की विभिन्नता के कारण देश को विभक्त करने के कुत्सित विचार वाले लोगों को यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इस संस्कृति की विविध धाराओं को साथ लेकर चलने वाले अनेक महापुरुषों की समृद्ध परम्परा का स्वामी है यह राष्ट्र। भगवान श्रीराम जैसे चरित्र और भगवान श्री कृष्ण के उपदेश सम्पूर्ण देश के हर प्रान्त, हर भाषा में समान श्रद्धा से अनुकरणीय माने जाते हैं। श्रीराम अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में जन्मे, बक्सर (बिहार) तक विश्वामित्र के आश्रम की रक्षा हेतु गए। मिथिला में विवाह हुआ, दण्डकारण्य में वनयात्रा हुई तो किष्किंधा (कर्नाटक) के राजा सुग्रीव से मित्रता सुदूर सागर पार श्रीलंका जाकर असुरविनाश किया और जाति, पंथ, मत, प्रान्त, भाषा, भूषा किसी भी भेदभाव से परे राम सारे भारत के आदर्श बने। मथुरा (उत्तर प्रदेश) के जन्मे कृष्ण राजधानी से गए पर ग्वालों के साथ ब्रज के गाँवों में पले, उज्जैन (मध्य प्रदेश) में गुरु सांदीपनि से विद्याध्ययन किया, हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र (हरियाणा) तक उनका कर्मक्षेत्र बना। महाभारत युद्ध में सारे भारत की राजनैतिक शक्तियों का एकत्रीकरण हुआ और अन्ततः प्रभासक्षेत्र में सागर तट पर अपनी लीला संवरण करने के पूर्व द्वारिका (गुजरात) में जा बसे। बुद्ध और महावीर के उपदेश सम्पूर्ण भारत ही नहीं देश-विदेश तक फैले।

गुरु नानकदेव जी प्रायः केवल सिखों के आदिगुरु या पंजाब के महापुरुष मान लिये जाते हैं क्योंकि सामान्य लोगों की जानकारी प्रायः इतनी ही है। भारत की संस्कृति ज्ञान परीक्षा

चारों दिशाओं में लम्बी-लम्बी यात्राएँ कर विभिन्न पंथों, सम्प्रदायों के प्रमुख सन्तों से भेंट कर प्रत्येक जाति, वर्ग, प्रांत के लोगों के लिए उनके उपदेश सिद्ध करते हैं कि गुरु नानक देव केवल सिख धर्मगुरु नहीं वरन् बाबर जैसे अत्याचारी के काल में आध्यात्मिक राष्ट्रीय चेतना से भारत को जगाने वाले राष्ट्रीय महापुरुष थे।

पंजाब में जन्मे गुरु नानकदेव, आन्ध्र के निम्बार्काचार्य, तमिलनाडु के रामानुजाचार्य, छत्तीसगढ़ के वल्लभाचार्य, सिन्ध के झूलालाल, केरल के शंकराचार्य, पश्चिम बंगाल के चैतन्य महाप्रभु, गुजरात के नरसी भगत, महाराष्ट्र के संत ज्ञानदेव, स्वामी रामदास, असम के शंकरदेव; ऐसी सुदीर्घ नामावली गिनायी जा सकती है कि किसी भी प्रान्त में जन्म लेकर किसी भी मातृभाषा के होते, एक ही सत्य को भिन्न प्रकार से समझाते सारे राष्ट्र को एक हिन्दू संस्कृति का बोध कराते महापुरुष निरंतर इस मातृभूमि की सेवा करते रहे हैं। स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ और श्री गुरुजी (माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर) जैसे अनेक महापुरुष, इस परम्परा के आधुनिक युग के आदर्श हैं।

ज्ञान परम्परा के साथ-साथ ही शौर्य परम्परा की भी इस मातृभूमि की सुदीर्घ विरासत हमें प्राप्त हुई है। वैदिक संस्कृति के प्रचारार्थ दक्षिण दिशा से अनेक द्वीपों को पार कर आज के कम्बोडिया नामक दक्षिण-पूर्व एशियायी देश के संस्थापक दिग्विजयी 'कम्बु', लाओस और वियतनाम तक जा पहुँचे कौण्डिन्य, लंका पर सन् 1017 में अधिकार कर चुके राजेन्द्र चोल (प्रथम) तो भारत की सीमाओं के पार तक शत्रुदमन करने जा पहुँचे बप्पारावल जैसे अनेक दिग्विजयी असंख्य वीरों की परम्परा अर्वाचीन युग के शूरवीरों रंगोजी बापू गुप्ते, स्वातन्त्र्य वीर सावरकर, आजाद हिन्द सरकार के सेनानी सुभाष चन्द्र बसु, मदन लाल धींगरा जैसे अनेक नामों के साथ वर्तमान में भी बनी हुई है। बालाकोट जैसे युद्धप्रसंगों में हमने सीमापार सेना के शौर्य का परिचय तो स्वयं ही पाया है।

महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह जी, गुरु तेग बहादुर, सम्राट अशोक, पुष्यमित्र शुंग, खारवेल, चन्द्रगुप्त मौर्य, शालिवाहन, हर्षवर्धन और क्रान्तिकारियों की सुदीर्घ परम्परा है। मातृभूमि के प्रति अपने शौर्य पराक्रम व सुशासन से, कर्तव्यपालन में, त्याग-बलिदान और निष्ठा में, अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करने वाले 'भरत पुत्रों' तथा चेन्नमा, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, मैना, ताज कुंवरि, प्रीतिलता वाद्दार् आदि तक 'भारत-पुत्रियों' की गाथा है।

समाज जीवन में उत्कर्ष प्रदान करने वाले महामना मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दयानन्द,

ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, नारायण गुरु, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर, ठक्कर बापा, स्वामी प्रणवानंद, डा.केशवराव बलिराम हेडगेवार, स्वामी सत्यमित्रानंद जैसे समाज सुधारकों, नागार्जुन, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत, भरद्वाज से लेकर आधुनिक युगीन डा. मेघनाद साहा, डा. जगदीश चन्द्र बसु, चन्द्रशेखर वैकट रमन, सत्येन्द्र नाथ बोस, श्री निवास रामानुजन, ए.पी.जे.अब्दुल कलाम, विक्रम साराभाई जैसे गणित, विज्ञान एवं चिकित्सा आदि क्षेत्रों में विशेष ज्ञान एवं अनुसंधान कर सारे विश्व को चमत्कृत कर देने वालों की सुदीर्घ परम्परा में असंख्य नाम गिनाए जा सकते हैं।

विश्व से भारत के सम्बन्ध

इस भरत भूमि का कण-कण ज्ञान, विज्ञान, कला, शिल्प, व्यापार आदि विविध क्षेत्रों में महान उपलब्धियों से दीप्त है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण इस राष्ट्र के समान ज्ञानात्मक वैभव तथा भौतिक समृद्धि विश्व की अन्य मानव जातियों के लिये लोभनीय रहा है। उन्होंने अपने इस लोभ की पूर्ति के दो मार्ग अपनाए। पहला, वे लोग धर्म-ज्ञान-विज्ञान-योग-कला आदि जीवनोत्कर्षकारी विषयों को जानने, सीखने हमारे देश में आते रहे और समय-समय पर हमारे देश के महापुरुषों ने भी देश-देशान्तर की यात्राएँ कर अपनी ज्ञान निधि से संसार को तृप्त किया। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का औदार्य भारतीय चिंतन का सनातन तत्त्व है और अपनी किसी उपलब्धि का केवल हम अपने लिये ही उपभोग करें ऐसा संकुचित विचार कभी नहीं रहा। आज भी भारतीय आयुर्वेद, योग, संस्कृत और जीवन पद्धति आधारित पाठ्यक्रम विश्व के अनेक देशों में विधिवत पढ़ाये जाते हैं।

दूसरा मार्ग नकारात्मकता से भरा था। भारतीय संस्कृति और समृद्धि से ईर्ष्या, द्वेष एवं उसे लूट लेने या नष्ट-भ्रष्ट कर देने के उद्देश्य से बर्बर जातियों ने हमारे देश पर भीषण आक्रमण किया। शक, हूण, यूनानी, यवन से लेकर अंग्रेजों और स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी आक्रमणों का यह क्रम चलता रहा। यद्यपि इसका उचित प्रतिकार भी हुआ लेकिन अनेक बार आक्रान्ताओं ने हमारी संस्कृति, समृद्धि और ज्ञाननिधि को गहरी क्षति पहुँचायी। महीनों शांत न होने वाली पुस्तकालयों में लगायी गयी आग, अपार ज्ञान राशि युक्त अमूल्य ग्रन्थों को निगल गयी। हमारे प्राचीन मंदिरों, भवनों, नगरों के भग्नावशेष कला और स्थापत्य पर इन क्रूर प्रहारों की करुण गाथा कहते हैं। अपने देश-धर्म-संस्कृति की रक्षा और मातृभूमि के मान के लिये शूरवीर राजाओं से साधारण नागरिकों तक ने अपना रक्त बहाया।

महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी महाराज ने सामान्य वनवासियों-भीलों, मावलों, ग्रामीण कृषकों आदि को साथ लेकर मातृभूमि की रक्षा कर अपना धर्म निर्वाह किया है। स्वतंत्रता की पहली लड़ाई 1857 का स्वातन्त्र्य समर अंग्रेजों के विरुद्ध इतना व्यापक संघर्ष था कि बाजीराव पेशवा की पुत्री मैना जैसे अल्पवय बच्चों से लेकर अस्सी वर्षीय कुँवर सिंह तक क्या श्रीमन्त, क्या निर्धन, क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बच्चे, क्या युवा, प्रौढ़ और वृद्ध; हर जाति, वर्ग, पंथ, मत के लोग मातृभूमि के प्रत्येक प्रान्त, नगर, ग्राम से आततायी अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति में सम्मिलित थे। आजादी की दूसरी लड़ाई में हमने स्वतंत्रता प्राप्त करके ही दम लिया। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, सुब्रह्मण्य भारती, सरदार पटेल या मदनमोहन मालवीय अपने-अपने प्रकार से आन्दोलनों के रूप में अथवा भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, रासबिहारी बसु, सुभाष बाबू, खुदीराम, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्ति-पथ से स्वाधीनता का प्रयास कर रहे थे, लेकिन सम्पूर्ण भारत के मातृभूमि के पुत्र अपना तन-मन-धन और जीवन समर्पण कर उठ खड़े हुए।

हजारों हजार सैनिक आज भी प्रतिदिन अपने प्राण हथेली पर लिये सीमाओं पर मातृभूमि की रक्षा में चौकन्ने खड़े हैं। मातृभूमि के उत्कर्ष के लिए किसान अपना पसीना खेतों में सींच कर प्रचुर अन्न उपजा रहे हैं, श्रमिक दिन-रात उसे सुखी, सम्पन्न, सुविधा और साधन युक्त बनाने के लिए निर्माण में लगे हैं, वाणिज्य विज्ञान, रक्षा, अनुसंधान, चिकित्सा आदि में इसी मातृभूमि का वैभव-वर्द्धन करने में संलग्न है। विविध नवाचारों के साथ साहित्य, संगीत, कला, शिल्प आदि में नए प्रतिमान गढ़े जा रहे हैं। क्रीड़ा जगत में हमारा राष्ट्र वैश्विक स्तर पर सम्मानजनक स्थिति में खड़ा है।

यह सब इसलिये हुआ और हो रहा है कि हम भारतीयों के मन में अपनी मातृभूमि का गौरव, उसके प्रति अनन्य भक्ति, आस्था और कृतज्ञता का भाव सुदृढ़ है। हम इस सदावत्सला (हमेशा पुत्रवत् स्नेह लुटाने वाली) भारत जननी से अगाध आत्मीयता अनुभव करते हैं। यह हमारी माँ है, मातृभूमि है, यही भाव राष्ट्रीयता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत-भारती' की ये पक्तियाँ इसी आशा एवं विश्वास से कोटि-कोटि भारतीयों का आह्वान करती हैं -

विद्या कला कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो।

उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो॥

सुख और दुख में एक सा सब भाइयों का भाग हो।

अन्तःकरण में, गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो॥

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब

सिख गुरु-परम्परा के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जनदेव जी की पन्द्रह वर्ष की तपस्या रूपी संकलन एवं संपादन के फलस्वरूप 1430 पृष्ठों का विशाल आदि ग्रन्थ ही कालान्तर में मानव जाति के साझे गुरु के रूप में स्थापित हुआ। हरमंदिर साहिब में श्री बाबा बुद्धा सिंह जी द्वारा इसे अत्यन्त सम्मान और समारोहपूर्वक स्थापित किया गया और वे ही प्रथम ग्रन्थी (पढ़ने वाले) भी थे। दशमेश गुरु गोविन्द सिंह जी ने इसे अपने बाद देहरूप गुरु परम्परा के स्थान पर तत्त्वरूप गुरु मानने का आदेश दिया, 'सब सिक्खन को हुकुम है गुरु मानियो ग्रन्था'

गुरु अर्जन देव जी ने धार्मिक समता एवं समन्वय का उद्देश्य सामने रखते हुए पहले चार गुरुओं गुरु नानकदेव जी, गुरु अंगददेव जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी तथा स्वयं की वाणी के साथ समकालीन तथा पूर्ववर्ती तीस सन्तों की चुनी हुई वाणी को इस ग्रन्थ में सम्मिलित किया। बाद में इसमें श्रीगुरु तेगबहादुर जी और गुरु गोविन्द सिंह जी की वाणी भी सम्मिलित कर ली गई।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब गुरुओं की जीवनी या इतिहास का ग्रन्थ नहीं है। इसमें मात्र एक परमसत्ता और व्यावहारिक जीवन युक्ति का वर्णन है। इसकी भाषा गुरुमुखी है तथा सभी रचनाएँ पद्यमय, संगीतबद्ध और गेय हैं। इसमें 31 शास्त्रीय रागों का प्रयोग हुआ है।

श्रीगुरुग्रन्थ साहिब राष्ट्रीय एकसूत्रता का अनुपम उदाहरण है। गुरु अर्जनदेव ने इसे ईश्वरीय वाणी का वह विशाल सागर बनाया जिसमें महाराष्ट्र के नामदेव और परमानंद, गुजरात के त्रिलोचन, दक्षिण के रामानंद, पश्चिम बंगाल के जयदेव, राजस्थान के धन्ना, पश्चिमी सीमांत के शेख फरीद और सिन्ध के सदना की वाणियाँ हैं। धार्मिक कट्टरता, जाति-वर्ण आदि के भेदभावों से भरे उस युग में इस ग्रन्थ में जुलाहे कबीर, चर्म सम्बन्धित कार्य करने वाले रविदास, कसाई सदना, वैश्य त्रिलोचन, राजपूत पीपा, जाट धन्ना, ब्राह्मण सूरदास, जयदेव, परमानंद आदि ही नहीं मुसलमान शेख फरीद भी एक साथ उपस्थित हैं। ये सभी जन्म से अलग वर्ण व प्रांत के होकर भी ईश्वरीय सत्ता का गुणगान करने वाले आध्यात्मिक पुरुष थे। इस प्रकार सामाजिक समरसता का अनुपम उदाहरण है श्री गुरुग्रन्थ साहिब।

पुत्ररूप हिन्दू समाज

भारतवर्ष में हर युग में अनेक महापुरुष जन्म लेते रहे हैं। उनके कार्यों एवं दिशानिर्देशों से समाज सदैव उपकृत होता रहा है। सभी महापुरुषों ने उच्च जीवनमूल्य युक्त समरस समाज की स्थापना का प्रयत्न किया। भारतमाता की ऐसी

ही कुछ श्रेष्ठ सन्तानों का अल्प परिचय यहाँ उद्धृत है -

(1) भगवान बुद्ध-

ईसा से 563 वर्ष पूर्व वैशाख मास की पूर्णिमा को नेपाल की तराई में लुम्बिनी नामक वन में कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन और माता मायादेवी के घर बालक सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्म के सातवें दिन ही माता का स्वर्गवास हो गया और अपनी मौसी गौतमी के पास रहते हुए नाम 'गौतम' पड़ गया। यशोधरा से विवाह हुआ और 'राहुल' नामक पुत्र भी हुआ, पर तीस वर्ष की युवा अवस्था में ही जरा, व्याधि और मृत्यु के रहस्य जानने और संसार को कष्ट से मुक्ति दिलाने के महा उद्देश्य के लिये एक रात्रि वे राजमहल के सुख-वैभव छोड़ निकल पड़े। गया (बिहार) में एक अश्वत्थ वृक्ष (पीपल) के नीचे छः वर्ष के कठोर तप के बाद आपको वैशाख पूर्णिमा के दिन ही महाज्ञान अर्थात् 'बोध' प्राप्त हुआ और वे सिद्धार्थ से 'बुद्ध' हो गए। कुशीनगर (उ०प्र०) के निकट अपना अंतिम संदेश दे 'महापरिनिर्वाण' (देहत्याग) कर वे संसार को एक महान भेंट दे गए।

रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और कर्मकाण्ड से त्रस्त मानवता के लिए 'करुण-भाव-दर्शन' और 'व्यर्थाडम्बर रहित साधना पद्धति' के रूप में बुद्ध ने नवीन प्राणवायु संचारित कर दी, जिसने देश-देशांतर नेपाल, तिब्बत, बर्मा, वियतनाम, चीन, जापान, मंगोलिया, श्रीलंका, कोरिया, जावा और सुमात्रा आदि अनेक देशों में मानवता को संजीवनी दी। बुद्ध ने सांस्कृतिक उत्थान के नवयुग का प्रवर्तन किया। राम और कृष्ण के बाद भारतीय समाज में सर्वाधिक प्रतिष्ठित बुद्ध ही हुए। उनके विचारों पर आधारित ग्रन्थलेखन, मूर्तिकला, स्तूपों और मठों की स्थापना, गुफाओं में भित्ति चित्र रचनाएँ आज भी साहित्य, कला और स्थापत्य की अमूल्य धरोहर हैं। जातिगत ऊँच-नीच, आर्थिक असमानता, धार्मिक आडम्बरों के भेदभाव से रहित बुद्ध मानवता के प्रति असीम करुणा के महाअवतार हैं। 'बुद्ध' ने भारतीय सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकात्मता का पुनरुद्धार किया। हिन्दू धर्म में आ गई कुरीतियों को दूर कर उसका समयोचित संशोधन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करने वाले भगवान बुद्ध सबके लिए वन्दनीय हैं।

(2) स्वामी रामानन्द -

सामाजिक परिवर्तन के इतिहास में अपने अनूठे भक्ति आन्दोलन से अमिट योगदान के लिये स्वामी रामानन्द सदैव स्मरणीय रहेंगे। उनका जन्म 1299 ई० में प्रयाग में हुआ। बारह वर्ष की अवस्था से ही वेदों, शास्त्रों, पुराणों और वैदिक दर्शनों का अध्ययन रखते हुए गुरु राघवानन्द जी से संन्यास दीक्षा लेकर काशी के

पंचगंगाघाट पर तपस्या करने लगे। रामानन्द जी के समय दिल्ली की सत्ता मुस्लिम आक्रान्ताओं के हाथ में जा चुकी थी। हिन्दू निर्धनता और दमन झेलने को विवश थे। ऐसे में सैकड़ों साधु-सन्तों को साथ लेकर स्वामी रामानन्द ने भक्ति, लोक संस्कार और भेदभाव-शून्य सामाजिक एकता का शंखनाद किया जिसकी गूँज से आततायी शासक थर्रा उठे और उत्तर भारत से महाराष्ट्र, बंगाल और असम पर्यन्त, करोड़ों भारतीय निर्भयता अनुभव करने लगे। आपने ऊँचनीच को धर्म-विरुद्ध घोषित कर एक सामाजिक क्रांति की और 'ईश्वर उपासना का अधिकार सबको है', ऐसी स्पष्ट घोषणा कर दी। उनके अनुसार ईश्वर के प्रति भक्ति के द्वार शक्त-अशक्त, सम्पन्न-विपन्न, शिक्षित-निरक्षर, ब्राह्मण-शूद्र, राजा-रंक तथा स्त्री-पुरुष सभी के लिये सदैव खुले हैं तथा ईश्वर के चरणों में विशुद्ध आत्मसमर्पण ही भक्ति का प्रमुख आधार है।

लगभग 25 हजार शिष्यों को राममंत्र से दीक्षित कर अपने भक्ति आन्दोलन को व्यापक सामाजिक क्रांति का रूप देने वाले स्वामी रामानन्द जी के प्रधान शिष्य मण्डली में अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, योगानन्द (सभी ब्राह्मण), संत पीपा जी (क्षत्रिय), संत कबीर जी (जुलाहा), संत सेन जी (नाई), संत धन्ना जी (जाट), संत रविदास जी (चर्मकार) एवं पद्मावती, सुरसरि तथा गंगा जैसी स्त्रियाँ भी थीं।

सामान्य बोलचाल की भाषा में भक्ति साहित्य लिखने की प्रेरणा स्वामी रामानन्द का महत्वपूर्ण कार्य है। उस समय संस्कृत की अपेक्षा लोकभाषा में साहित्य सृजन हेय माना जाता था। जनसामान्य की समझ में आने योग्य बनाने का यह एक क्रान्तिकारी चरण था। 'आरति कीजै हनुमान लला की' प्रसिद्ध हनुमान आरती स्वामी रामानन्द की ही रची हुई है। बुद्धि एवं बल के देवता हनुमान जी के ग्राम-ग्राम में मंदिर स्थापना की आवश्यकता को बताया। वे सच्चे अर्थों में जगद्गुरु थे। सन् 1448 में समर्थ शिष्य परम्परा को अपने अभियान का दायित्व सौंप कर वे परमपिता के चरणों में चिरलीन हो गए।

(3) संत रविदास -

सन्त रामानन्द की शिष्य परम्परा के अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्र सन्त रविदास अपने ज्ञान और उच्च आध्यात्मिक स्थिति के कारण सम्पूर्ण भारतीय समाज में प्रतिष्ठित हैं। उनका जन्म 1376 ई० में काशी के निकट मडुआडीह नामक स्थान पर पिता रघु जी और माता करमादेवी जी के घर माघमास की पूर्णिमा को हुआ। परिवार में पैतृक परम्परा से ही जूते बनाने का कार्य होता था जिसे ऊँची

आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त होने पर भी रविदास जी ने नहीं छोड़ा। यह बात ज्ञान के साथ कर्म की महत्ता को प्रकाशित करती है। ज्ञान, चरित्र और विनयी स्वभाव की त्रिवेणी से पवित्र आपके स्वभाव से लाखों लोग उनके अनुयायी बने। तत्कालीन काशी नरेश, चित्तौड़ राजवंश की रानी झाली और भक्तिमती मीराबाई ने संत रविदास का शिष्यत्व ग्रहण किया।

संत रविदास को जातिगत द्वेष से भी संघर्ष करना पड़ा लेकिन वे भगवद्भक्ति को आधार बनाकर अपने सुन्दर, सरस, भावपूर्ण पदों में व्यक्त उपदेशों से समता, ममता, उदारता और वात्सल्य का प्रसाद ही बाँटते रहे। सिकन्दर लोदी ने उन पर धर्म बदलने का दबाव बनाया, प्रलोभन दिये पर रविदास जी का उत्तर था—

वेदवाक्य उत्तम धरम, निर्मल वाका ज्ञान।

वह सच्चा मत छोड़कर, मैं क्यों पढ़ूँ कुरान॥

सिकन्दर लोदी ने उन्हें कठोर दण्ड देने की धमकी दी तो उन्होंने कहा -

मैं नहि दब्बू बाल गँवारा, गंग त्याग गहूँ ताल किनारा।

प्राण तजूँ पर धर्म न देऊँ, तुमसे शाह सत्य कह देऊँ॥

चोटी शिखा कबहुँ नाहिं त्यागूँ, वस्त्रसमेत देह भल त्यागूँ।

कंठ कृपाण का करौ प्रहारा, चाहे डुबावो सिन्धु मझारा॥

स्वधर्म के प्रति अटल निष्ठावान संत रविदास बाह्य आडम्बरों में आस्था नहीं रखते थे। सैकड़ों भक्तिपदों में सरल, शुद्ध, सात्विक एवं समन्वयकारी भक्तिमार्ग का उपदेश देने वाले संत शिरोमणि रविदास हिन्दी भक्ति साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं।

(4) सन्त कबीर—

अपनी निर्भीक, तीखी सधुक्कड़ी भाषा में धर्म को पाखण्ड बनाने वालों को फटकार लगाने वाले सन्त कबीर जैसे स्पष्टवादी सन्त अनन्य हैं। वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पती को काशी के लहरताल पर नवजात शिशु के रूप में मिले थे। अतः यही सन् 1398 की ज्येष्ठ पूर्णिमा ही आपकी जन्म तिथि मान ली गई। स्वामी रामानन्द को उन्होंने गुरु बनाया लेकिन 'राम' को अपने ही ढंग से समझा और समझाया। कपड़ा बुनना छोड़ा नहीं पर करघा, ताना-बाना, पूनी, सूत-कपास, रंग और चदरिया लोगों को सच्चा ज्ञान कराने में सहयोगी उपमान बन गए। वे स्वयं को निरक्षर कहते हैं पर उनके समान समाज प्रबोधक इतिहास में दुर्लभ है। वे छुआछूत, भेदभाव, धर्मिक ढकोसलों, आडम्बरों के विरुद्ध गंभीर गर्जना करते हैं। कबीर के वचन तीखे हैं पर भ्रम और अज्ञान का समूल उच्छेद करते हैं। कबीर

सीधी सपाट अनगढ़ भाषा में 'बाजार बीच' खड़े होकर 'ढाई आखर प्रेम' का अमर सन्देश देते हैं।

मुस्लिम शासकों के शासन काल में कबीर मुल्ला-मौलवियों को फटकार लगाने वाले अद्वितीय संत हैं। कबीर का मत, उनके उपदेश, साखियाँ और उलटबासियाँ आज सैकड़ों वर्षों के पश्चात् भी गाँव-गाँव, घर-घर गायी और उद्धृत की जाती हैं।

कबीर मानवता के पक्षधर हैं। संवदेनशील संत हैं। वे कहते हैं-

कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।

जो पर पीर न जानई, सो काफिर बे पीर॥

कबीर ने 1517 में मगहर में अपनी देह त्यागी। कालान्तर में 'कबीर पंथ' के नाम से अनुयायियों का एक विशेष सम्प्रदाय ही बन गया, परन्तु कबीर सारे मानव समाज के थे, हैं और रहेंगे।

(5) स्वामी दयानंद सरस्वती -

सन् 1824 ई० में गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के मोरबी के टंकारा नगर में श्री करसन लाल तिवारी और माता अमृता बाई के पुत्ररूप में जन्मे मूलशंकर आगे चलकर अपनी असाधारण विद्वत्ता और तार्किकता के कारण उस उच्च अवस्था पर जा पहुँचे कि लोग उन्हें 'महर्षि' कहने लगे। बचपन से ही आपने वेदों की हजारों ऋचाएँ कंठस्थ कर ली थीं। 21 वर्ष की तरुणवय में ही संन्यास दीक्षा लेकर वे स्वामी दयानंद नाम से प्रतिष्ठित हुए। सन् 1860 में आप कठोर व्रतधारी, वेद शिरोमणि स्वामी विरजानंद जी के पास मथुरा आ गए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती बाल्यकाल से ही मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे। वेदों को जातिगत भेदभाव और ब्राह्मणों के एकाधिकार से मुक्त कर इस अमूल्य ज्ञान राशि को सर्व मानव समाज के लिए सुलभ बनाने में महर्षि दयानंद का योगदान अतुल्य है। बाह्य आडम्बरों से रहित वैदिक मार्ग को प्रशस्त करने और यज्ञोपवीत आदि संस्कार, यज्ञादि कर्म और वेदाध्ययन का अधिकार सभी को दिलाने के लिये उन्होंने शास्त्रार्थ और संघर्ष किए।

1875 ई० में वर्ष प्रतिपदा के दिन मुम्बई में स्वामी जी ने "आर्य समाज" की स्थापना की। हिन्दू समाज के पुनर्जागरण और समाज में आयी कुरीतियों को दूर कर वेदों की पुनः स्थापना के उद्देश्य से 'आर्यसमाज' आज भी विद्यमान है। आर्य समाज में जाति एवं लिंग भेद के परे सभी को पुरोहित होने का अधिकार देता है। स्त्री शिक्षा और समरस समाज के लिए स्वामी दयानंद सदैव अविस्मरणीय रहेंगे।

स्वामी दयानन्द ने वेद को संस्कृति का आधार ग्रन्थ माना, अवतारवाद का खण्डन किया, पुराणों को अमान्य किया, मूर्तिपूजा का निषेध किया, वेदों की नयी व्याख्या की। यह व्याख्या 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है।

महर्षि दयानन्द की दूसरी अमूल्य देन है शुद्धि आन्दोलन। मुस्लिम अत्याचारों के कारण बलात् धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बना लिये गए लोगों के लिये स्वेच्छापूर्वक पुनः स्वधर्म में आने का मार्ग स्वामी जी ने खोला। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसे आगे बढ़ाया और एक बार धर्मच्युत् हो जाने पर सदा के लिए अपने पूर्वजों की परम्परा से बाहर हो जाने की विवशता समाप्त की।

स्वामी दयानन्द के आर्य समाज से दीक्षित स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द जी, रामप्रसाद बिस्मिल जैसे प्रखर राष्ट्रभक्तों ने भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भी महती भूमिका निर्वाह की। श्यामजी कृष्ण वर्मा जैसे क्रान्तिकारियों को फ्रांस तक भेजा। 30 अक्टूबर 1883 को दीपावली के दिन उनकी देह पंचतत्त्व में विलीन हुई।

(6) श्रीमत् शंकरदेव-

श्रद्धेय शंकरदेव का जन्म श्रीमान कुसुंबर जी और श्रीमती सत्यसंघा जी के पुत्र रूप में सन् 1448 को दशहरे के दिन असम के नवगांव जिले में हुआ था। पूर्वज 100 वर्ष पूर्व कन्नौज से आकर यहाँ बस गए थे। 32 वर्ष की आयु में शंकरदेव बारह वर्षों के तीर्थ भ्रमण पर निकल गए। असम उस समय शाक्तमतावलम्बियों व तान्त्रिकों का गढ़ था। कर्मकाण्ड, बलिप्रथा, तन्त्र-मन्त्र आदि का बोलबाला था। शंकरदेव ने धार्मिक दंभों, अत्याचारों और कुत्सित कर्मकाण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई। आपने एकेश्वरवाद का समर्थन करते हुए कहा-

एक देव एक सेव, एक बिना नाई केव।

नाहि भकति जाति आचार विचार।।

पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति, कला, आध्यात्मिक दर्शन, साहित्य और आर्थिक क्षेत्रों में शंकरदेव का कुशल मार्गदर्शन मिला। वे उच्चकोटि के संत, कवि, नाटककार, भ्रान्ति निवारक एवं समाज सुधारक थे। कर्मकाण्डों का विरोध कर 'एक शरण नाम धर्म' की स्थापना कर आपने वैष्णव भक्ति का शुद्ध और परिवर्तित रूप स्थापित किया। आपने कहा-

कुकुर चाण्डाल गर्दभरो आत्माराम।

जानीया सबको परिकरिबा प्रणाम।।

(महापुरुष श्रीमत्शंकरदेव पृष्ठ 58)

अर्थात् कुत्ता, चाण्डाल, गधा सब में एक ही आत्माराम है यही जानकर सबको प्रणाम करो।

आपके अनुयायी सभी जातियों के थे। आपके प्रभाव से अनेक जनजातीय बन्धु वैष्णव बन कर समाज की मुख्यधारा में आ मिले। अनेक नामधरों (लोगों की सहायता से बिना दीवार का बाँस घास-फूस से बना आहाता) एवं सत्रों का निर्माण किया, यह प्रथा आज भी प्रचलित है। आपने स्थानीय असमिया भाषा में ‘रामायण’ एवं ‘भागवत’ का अनुवाद किया, धार्मिक कथानकों पर सामाजिक सन्देश-परक नाटकों का लेखन व मंचन किया। बरगीत, कीर्तन घोषा, हरिश्चन्द्र उपाख्यान, कालिय दमन, रुक्मणि हरण, पारिजातहरण, राम विजय आदि रचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत में रचे पांच सौ चौंसठ श्लोकों का ग्रन्थ ‘भक्तिरत्नाकर’ भी आपकी रचनाएँ हैं। श्रीमत् शंकरदेव का सांस्कृतिक, सामाजिक व साहित्यिक योगदान अमूल्य है। आपका परमलोक गमन 120 वर्ष की आयु में 1568 में हुआ।

अखण्ड भारत : विभाजन और कारण

किसी भी धार्मिक अनुष्ठान को करते समय पुरोहित प्रत्येक यजमान से एक संकल्प दुहराते हैं। संकल्प “विष्णोर्विष्णोर्विष्णोः अस्य श्री विष्णुराज्ञया प्रवर्तमानस्य...” शब्दों से आरंभ होता है। आगे इसमें शब्द आते हैं ‘जम्बुद्वीपे, भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गते देशे’। यह जम्बूद्वीप ही हमारे देश का प्राचीन भौगोलिक स्वरूप है। संस्कृत भाषा न समझने और इस ‘संकल्प’ जैसी महत्वपूर्ण क्रिया को कर्मकाण्ड मात्र मान लेने की भयंकर भूल से हम करोड़ों वर्ष प्राचीन संस्कृति और विशाल राष्ट्र की अखण्डता के गौरव का अनुभव करने से वंचित रह जाते हैं। इस जम्बुद्वीप में मिस्र, सऊदी अरब, ईरान, इराक, इजराइल, कजाकिस्तान, मलयेशिया, जावा, सुमात्रा, हिन्दुस्थान, बांग्लादेश, रूस, चीन, बर्मा, इन्डोनेशिया, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि सारे देश सम्मिलित हैं अर्थात् ये कभी इस अखण्ड राष्ट्र के अंग ही थे। यह ठीक है कि ये सदा से इनके वर्तमान नामों से नहीं जाने जाते थे लेकिन उपलब्ध सांस्कृतिक साक्ष्य इन सबके कभी न कभी बृहत्तर सांस्कृतिक भारत के अंग होने का प्रमाण देते हैं।

हमारा राष्ट्र वर्तमान स्वरूप से कहीं अधिक विस्तृत, विशाल रहा है। तथ्यों के अनुसार 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के समय तक ही भारत का क्षेत्रफल 83 लाख वर्ग कि॰मी॰ था जो आज मात्र 33 लाख वर्ग कि॰मी॰ रह गया है। सात विभाजन अंग्रेजों के समय ही हुए। इसके पूर्व 2500 वर्ष की अवधि में फ्रेंच, डच, कुषाण, शक, हूण, यवन एवं यूनानियों ने इस मातृभूमि की देवनिर्मित मूर्ति को विखण्डित किया।

अंग्रेजों के भारत आने के बाद भारत का प्रथम विभाजन 1876 ई० में अफगानिस्तान का हुआ जिसे प्राचीन भारत में उपगणस्थान कहा जाता था। अपने राजनैतिक स्वार्थवश रूस और अंग्रेजों ने मिलकर गंडामक सन्धि करके इसे भारत से अलग कर दिया।

सन् 1904 में प्राचीन किंपुरुष अर्थात् वर्तमान नेपाल को पर्वतीय राजाओं से समझौता कर अंग्रेजों ने भारत से अलग कर दिया, यद्यपि बाद में उसे अपने अधीन भी रखा।

इसके दो वर्ष बाद 1906 में ही भूटान को अंग्रेजी सरकार ने स्वतंत्र देश घोषित कर भारतमाता का एक और अंग विभाजन कर दिया। सन् 1914 में भारत का त्रिविष्टप (तिब्बत) अंग्रेजों ने बफर स्टेट घोषित कर दिया जिसे बाद में चीन ने हथिया लिया और तिब्बत चीन का हिस्सा कहलाने लगा।

म्यांमार और श्रीलंका भी 1935 में इसी तरह भारत से अलग हुए। 1947 में लाखों निरपराध भारतीयों के रक्त से जिस देश की सीमा रेखा बना दी गई वह था पाकिस्तान। इसी पाकिस्तान से टूट कर 1971 में बांग्लादेश का निर्माण हुआ। पाकिस्तान आज भी पाणिनि को अपना बताता है, अपनी संस्कृति को 5000 वर्ष प्राचीन कहता है। लेकिन कितना हास्यास्पद है यह, क्योंकि जिसके जन्म को सौ वर्ष भी नहीं हुए वह संस्कृति को 5000 वर्ष की कैसे बता रहा है? निश्चित रूप से वह भारत की संस्कृति की बात कह रहा है।

पाकिस्तान के रूप में भारत का अंतिम बड़ा विभाजन लार्ड माउंटबेटन द्वारा भारत स्वतंत्रता अधिनियम बनाकर कर दिया गया। तत्कालीन राजनैतिक नेतृत्व ने अपने ही पूर्ण स्वराज्य के संकल्प को भुला दिया और इस विभाजन को स्वीकार कर लिया। आज हम इस विखण्डन के कारण उत्पन्न अत्यन्त कष्टदायी परिस्थितियों को झेल रहे हैं। कुछ दशकों पूर्व हमारा ही भाग रहा पाकिस्तान आज भारत का घोर शत्रु ही नहीं विश्व के लिये भी चिंताजनक आतंकी देश बना हुआ है।

पाकिस्तान की करतूतों और हमारी कायरतापूर्ण उदारता के फलस्वरूप 1948 में भारत का मुकुटमणि महर्षि कश्यप की भूमि कश्मीर का बड़ा हिस्सा आज पाकिस्तान के कब्जे में है। आज जिसे POK (पाक अधिकृत कश्मीर) कहते हैं वह वस्तुतः POB (पाक अधिकृत भारत) है।

1963 में टेबल आइलैण्ड और पाकिस्तान द्वारा छारी फुलाई (जो कि कच्छ का भाग था) तथा 1972 में कच्चातिबू द्वीप भारत के पास नहीं रहा। 1982 में अरुणाचल का कुछ भाग चीन ने दबा लिया। 1992 में बांग्लादेश ने तीन बीघा क्षेत्र लेकर चीन को दे दिया। 2012 में फिर कुछ भाग हथिया लिया। ये सब

विभाजन के वे अत्यन्त पीड़ादायी अध्याय हैं जिनमें राष्ट्रीय एकता का अभाव और सांस्कृतिक गौरव की न्यूनता सबसे अधिक भूमिका रही।

एक धारा सकारात्मक भी बही। पं० दीनदयाल उपाध्याय ने कहा—“अखण्ड भारत मात्र एक विचार न हो कर विचारपूर्वक किया हुआ संकल्प है। कुछ लोग विभाजन को पत्थर की रेखा मानते हैं। उनका ऐसा दृष्टिकोण सर्वथा अनुचित है। मन में मातृभूमि के प्रति उत्कट भक्ति न होने का यह परिचायक है।” जयप्रकाश नारायण ने कहा “ हम सब अर्थात् भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश इन तीनों देशों में रहने वाले लोग वस्तुतः एक ही राष्ट्र भारत के वासी हैं। हमारी राजनैतिक इकाइयाँ भले ही भिन्न हों परन्तु हमारी राष्ट्रीयता एक ही है और वह है ‘भारतीयता’।”

5 अगस्त 2019, अखण्ड भारत की दिशा में स्वतंत्र भारत का एक ऐतिहासिक सकारात्मक कदम रहा जब भारत की संसद ने धारा 370 व 35 ए जो जम्मू कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देकर राष्ट्रघाती शक्तियों को उसे भारत से पृथक् कर देने का हथियार बन गयी थीं, को निष्प्रभावी कर दिया। ये ऐसे कदम हैं जो ‘अखण्ड भारत’ को स्वप्न नहीं ‘संकल्प’ की उसकी धरती पर स्थापित करते हैं। विखण्डन जितनी सरलता और शीघ्रता से होता है निर्माण अथवा पुनर्निर्माण में कठिनाई और दीर्घकालिक सतत साधना की आवश्यकता होती है। इस राष्ट्र को विखण्डित करने में सदियों दुष्प्रयत्न हुए तो पुनः अखण्डित करने में भी दीर्घकाल लगना संभावित है।

यहूदी 1800 वर्षों तक अपनी भूमि को छोड़कर संसार भर में भटके, अकथनीय दमन झेला। लेकिन पीढ़ी दर पीढ़ी पुनः अपनी मातृभूमि (जो प्राचीन भारत का ही भाग रहा था) पर मिलने की आशा का दीप जलाये रखा और अनन्तः उनका स्वप्न इजारायल के रूप में साकार हुआ। हम तो अपनी भूमि पर हैं। अपना संकल्प दृढ़ रहा तो न केवल भारत अखण्डित होगा बल्कि उसके विखण्डित भागों में बस रहे हमारे लाखों बन्धुओं के भी कष्ट दूर होंगे।

सुभाष चन्द्र बसु ने कहा था “भारत का एक सन्देश है जिसे संसार के कोने-कोने तक पहुँचाना है। भारत की संस्कृति में ऐसा कुछ है जो विश्व मानव के लिये बहुत आवश्यक है और जिसे ग्रहण किये बिना विश्व सभ्यता वास्तविक उन्मेष नहीं पा सकती।”

स्वामी विवेकानन्द का आह्वान है, “फिर एक बार जाग उठो! क्योंकि तुम सोये थे। वह मृत्यु नहीं थी। फिर एक बार! फिर एक बार! और फिर साहसी स्वप्नों के लिये कमलनयन पर भरोसा रखो। संसार तुम्हारी बाट जोह रहा है। सत्य का कभी नाश नहीं होता।”

आइये, इस आह्वान को अपना संकल्प बनाएँ। भारत माता की प्रतिमा पुनः अखण्ड स्वरूप में विश्व वन्द्य होगी।

भारतीय जीवन दृष्टि आध्यात्मिक है

मूल अव्यक्त आत्मतत्त्व परमात्मा के भावात्मक रूप प्रेम, सौंदर्य, ज्ञान, अभय व आनंद हैं। ये सभी तत्त्व सृष्टि में विविध रूपों में व्यक्त हुए हैं। इन तत्त्वों को आधारभूत मानकर भारतीय जीवन की व्यवस्थाएँ खड़ी हुई हैं।

इस संसार में जितने भी प्रकार के संबंध हैं, उन सबका आधारभूत तत्त्व प्रेम है। प्रेम से ही सब परस्पर जुड़े हुए हैं। जितने भी सृजन और निर्माण हैं, उनका आधारभूत तत्त्व सौंदर्य है। जितने भी कार्य हैं, उनकी परिणति आनंद है। जितने भी अनुभव हैं, उनका आधारभूत तत्त्व ज्ञान है। ज्ञान की फलश्रुति अभय है। सर्वत्र इन तत्त्वों का अनुभव करना ही जीवन को जानना है।

इनके उदाहरण हमें सर्वत्र दिखाई देते हैं। साहित्य, संगीत, कला एवं काव्य सृजन में तो आनन्द आता ही है, परन्तु प्रतिदिन की सफाई करना, रुग्ण की परिचर्या करना, कपड़े सीना, भोजन बना कर खिलाना जैसे घरेलू कार्यों में भी उसी आनन्द की अनुभूति होती है। इसी प्रकार एक राजा का प्रजा के साथ या शिक्षक का अपने विद्यार्थी के साथ पिता-पुत्र के सम्बन्ध की आत्मीयता रहती है। यह आत्मीयता ही प्रेम है। इस प्रेम के कारण ही सृष्टि में सौन्दर्य दिखाई देता है। आत्मीयता में एकत्व का बोध होता है, यही ज्ञान है। यही आध्यात्मिक जीवन दृष्टि है। आत्मतत्त्व को अधिष्ठान के रूप में स्वीकार कर जो व्यवहार और व्यवस्थाएँ बनी हैं, वह आध्यात्मिक हैं। विश्व में भारत की पहचान आध्यात्मिक देश की है।

परिवार का आधार एकात्मता -

हमारी समाज व्यवस्था इसी जीवन दृष्टि पर आधारित है। भारतीय समाज व्यवस्था के केन्द्र में परिवार है। इस परिवार का आधार एकात्मता है। एकात्मता का अर्थ है, 'सबसे में एक ही आत्मा का वास है'। इसलिए हम सब एक हैं। सबको एक मानने के व्यवहार का मूल सूत्र यह एकात्मता का भाव ही है। वेदों का एक महावाक्य है, "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब ब्रह्म ही है।

योगसूत्र में पाँच सार्वभौम महाव्रतों का पालन करने का निर्देश दिया गया है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाँचों महाव्रत समाज जीवन को आध्यात्मिक अधिष्ठान देते हैं। भारतीय जीवन दृष्टि में अध्यात्म और भौतिकता एक

दूसरे से अलग और एक दूसरे के विपरीत नहीं माने गये हैं। अध्यात्म सभी भौतिक रचनाओं में रचा-बसा है। हमारे ग्रन्थ हमें बताते हैं कि तत्त्व के अनुसार ही व्यवहार होना चाहिए। इसलिए हमारे यहाँ अध्यात्म के अधिष्ठान पर भौतिक रचनाएँ खड़ी की गई हैं। तत्त्व और व्यवहार की एकात्मता भारतीय जीवन दृष्टि की विलक्षणता है। परिणामस्वरूप समाज जीवन के लिए अभ्युदय व निःश्रेयस अर्थात् लौकिक समृद्धि एवं पारलौकिक उन्नति दोनों साथ-साथ ही रहते हैं। यह तभी संभव है, जब परिवार इकाई सुदृढ़ हो। आज इसी एकात्मता की कमी होने के कारण हमारे परिवार टूट रहे हैं। परिवारों के टूटने से समृद्धि व संस्कृति का हास हो रहा है। हमें अपने-अपने परिवारों को एकात्मता के सूत्र में बाँधकर उसे सुदृढ़ बनाना है।

हमारी दृष्टि समग्रता की है –

भारतीय जीवन दृष्टि में मात्र व्यक्ति का विचार न कर समष्टि, सृष्टि व परमेष्ठी का भी विचार किया गया है। व्यष्टि के विचार से समष्टि का विचार बड़ा है, समष्टि से सृष्टि का विचार बड़ा है और सृष्टि से भी परमेष्ठी का विचार बड़ा है। अतः हमारे विचार का केन्द्र बिन्दु व्यष्टि नहीं है, परमेष्ठी है। परमेष्ठी के विचार में व्यष्टि, समष्टि व सृष्टि का विचार स्वतः समाविष्ट है। भारतीय जीवन दृष्टि खण्ड-खण्ड में विचार नहीं करती, समग्रता में विचार करती है। इसी कारण हमारे समाज जीवन में संघर्ष नहीं, समन्वय है। एक के विरुद्ध दूसरा नहीं होता। एक को मिलेगा तो दूसरे को नहीं मिलेगा, ऐसा नहीं है। सबको अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार मिलेगा। हमारी श्रद्धा है कि ‘भगवान कभी भूखा नहीं सुलाता।’ अर्थात् इस सृष्टि में जितने भी प्राणी हैं, उन सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति करती है।

भारतीय जीवन दृष्टि की समग्रता की एक और विशेषता है कि यह केवल भारत का नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का विचार करती है, सचराचर जगत् का विचार करती है। इसलिए भारत के मनीषियों ने सदैव कहा, ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’। सम्पूर्ण जगत् के कल्याण की कामना करने वाली भारत की जीवन दृष्टि है। शान्तिपाठ में ‘सम्पूर्ण सृष्टि में शान्ति स्थापित हो’ यही कामना की गई है – “ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥”

अर्थात् हे जगत् के परब्रह्म परमेश्वर, शान्ति स्थापित करें। तीनों लोकों में, जल में, धरती में और आकाश में अन्तरिक्ष में, अग्नि में, पवन में, औषधि में, वनस्पति में, वन-उपवन में सम्पूर्ण विश्व में शांति स्थापित करें।

भारत में प्रत्येक मत-पंथ के विचारकों ने भारतीय जीवन दृष्टि के इन सभी सिद्धान्तों को एकमत से स्वीकारा है और अपने जीवन में उतारा है। भारत का सामान्य व्यक्ति भले ही इन सूत्रों का अर्थ नहीं जानते हों, उनके व्यवहार में ये सभी सिद्धान्त आज भी व्यवहृत होते दिखाई देते हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णव्यवस्था एवं आश्रम व्यवस्था, इन दोनों को संयुक्त करने पर वर्णाश्रम व्यवस्था नामक संज्ञा बनती है। हमारी समाज व्यवस्था धर्म का अनुसरण करने वाली है, इसलिए वर्णाश्रम व्यवस्था को वर्णाश्रम धर्म भी कहा जाता है। वर्ण और आश्रम संख्या में चार-चार हैं। प्रत्येक वर्ण और आश्रम का अपना-अपना धर्म है, वह धर्म क्या है? इसे हम इस अध्याय में समझेंगे।

वर्ण व्यवस्था —

सुसंस्कारित एवं सुसभ्य समाज की कल्पना तभी की जाती है, जब उस समाज के सब लोग मिलजुलकर रहते हों, सबमें परस्पर सौहार्द हो, सबके लिए सुख, शान्ति, समृद्धि और संस्कार सुलभ हों। ऐसा सुसंस्कृत समाज बनाने के लिए हमारे मनीषियों ने वर्ण व्यवस्था दी। आज यह व्यवस्था अत्यन्त विकृत हो गई है, किन्तु मूल में तो यह समाज की धारणा करने वाली तथा मनुष्यों की अर्थ व काम की प्रवृत्ति को सम्यक् रूप से नियमन में रखने वाली श्रेष्ठ व्यवस्था ही है। हमें चाहिए कि हम इस व्यवस्था को समझकर, इसकी विकृतियाँ दूर कर इसे पुनः व्यक्ति व समाज के लिए उपयोगी बनायें।

श्रीमद्भगवद्गीता में बताया गया है कि गुण और कर्म के अनुसार वर्ण निश्चित होते हैं। गुण का अर्थ है, सत्त्व, रज व तम नामक तीन गुण। ये तीनों गुण प्रत्येक व्यक्ति में होते ही हैं। इन गुणों के कम-अधिक होने से वर्ण निर्धारित होते हैं।

पूर्वजन्मों के संस्कारों से बने कर्मफल, जो इस जन्म के साथ आए हैं और इस जन्म में नये बनने वाले संस्कारों को कर्म कहते हैं। ये गुण और कर्म प्रत्येक मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों के कारण ही बनते हैं। प्रत्येक मनुष्य का प्राकृतिक वर्ण भिन्न-भिन्न होता है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था में यह वंश के अनुसार हो जाता है।

चारों वर्णों का अपना-अपना स्वधर्म है। जिसके अनुसार उनका कर्म और आचार निश्चित है। ब्राह्मण का कर्म अध्यापन करना, पौरोहित्य करना और चिकित्सा करना है। इस दृष्टि से शुद्धता, पवित्रता, तप, संयम, सादगी व साधना उसका आचार है। क्षत्रिय का कार्य है युद्ध करना, दुर्बलों की रक्षा करना, दान देना

और शासन चलाना। शौर्य उसका स्वभाव है, दान देना उसकी प्रवृत्ति है और घाव सहना उसका काम है। वैश्य का काम है समाज की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करना। अन्न-वस्त्र की आवश्यकता हेतु वह कृषि करता है। सबको भौतिक संसाधन आवश्यकतानुसार मिले, इसकी व्यवस्था करता है। वह वैभव में रहता है और लक्ष्मी का उपासक है। शूद्र व्यापक अर्थ में शरीर के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ बनाने वाला है। सर्व प्रकार की कारीगरी करना और अनेक वस्तुओं का निर्माण करना शूद्र वर्ण का काम है।

इन वर्णों में ब्राह्मण सरस्वती का, क्षत्रिय दुर्गा का, वैश्य लक्ष्मी का और शूद्र अन्नपूर्णा का उपासक है। ब्राह्मण ज्ञान और संस्कार की उपासना कर समाज व संस्कृति को बनाये रखता है। शूद्र भौतिक समृद्धि सुनिश्चित करता है। क्षत्रिय इन सबकी रक्षा का और वैश्य सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था करता है। इस प्रकार चारों वर्ण अपने-अपने कार्यों से समाज की सेवा करते हैं। किन्तु जब ये चारों अपना दायित्व भूल जाते हैं तो समाज अव्यवस्थित होकर कमजोर हो जाता है। ब्राह्मण जब दायित्व भूलता है तो समाज की दुर्गति होती है। क्षत्रिय जब दायित्व भूलता है तो समाज असुरक्षित हो जाता है। वैश्य जब अपना दायित्व भूलता है तो समाज दरिद्र बन जाता है। शूद्र जब अपना दायित्व भूल जाता है, तब समाज कठिनाइयों से घिर जाता है।

अतः किसी भी समाज में ये चारों वर्ण होने चाहिए और उनके कार्यों की समुचित व्यवस्था भी होनी चाहिए। सब अपना-अपना काम करें और किसी को काम का अभाव न रहे। ऐसी व्यवस्था को स्वायत्त समाज व्यवस्था कहते हैं। वर्ण व्यवस्था में जाति व्यवस्था के संकुचित चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए।

आज वर्ण व्यवस्था विकृत हो गई है। यह गुण कर्म से न होकर जन्म से होने के कारण जाति व्यवस्था में बदल गई है। छुआछूत का व्यवहार होने के कारण सामाजिक समरसता नष्ट होकर विद्वेष बढ़ाने का साधन बन गई है। चारों वर्णों ने अपने-अपने आचार छोड़ दिये हैं। विवाह भी वर्ण के अनुसार करने की आज बाध्यता नहीं है। वर्ण व्यवस्था जब से जाति व्यवस्था में बदली है, तब से अव्यावहारिक हो गई है। वर्ण व्यवस्था समाज की धारणा करने वाले, समाज धर्म का प्रमुख आयाम है।

आश्रम व्यवस्था —

आश्रम शब्द पढ़ते ही हमारे मानस पटल पर प्राचीन ऋषियों-वसिष्ठ, वाल्मीकि व सान्दीपनि के आश्रम उभर आते हैं। किन्तु यहाँ आश्रम शब्द भिन्न अर्थ

में प्रयुक्त हुआ है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति जीवन से है। सुसंस्कृत व्यक्तियों से ही समाज सुसंस्कृत बनता है। समाज को सुसंस्कृत बनाने के लिए व्यक्ति को अपने जीवन में नियम-संयम अपनाने पड़ते हैं। व्यक्ति का जीवन नियमित एवं संयमित बने इसके लिए हमारे पूर्वजों ने आश्रम व्यवस्था बनाई। मनुष्य जीवन को 100 वर्षों का मानकर उसे 25-25 वर्षों के चार चरणों में बाँट कर चार आश्रमों का नाम दिया— ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम।

‘आश्रम’ में मूल शब्द ‘श्रम’ है। श्रम करने का अर्थ है कष्ट करना, मेहनत करना। वेदविज्ञ डॉ० दयानन्द भार्गव ने श्रम की व्याख्या इस प्रकार की है, “जहाँ केवल अपने निजी भौतिक लाभ के लिए कष्ट किया जाता है, वह श्रम है। जहाँ दूसरों की आज्ञा से दूसरों के लिए कष्ट किये जाते हैं, वह परिश्रम है। परन्तु जहाँ दूसरों के लिए स्वेच्छा और आनन्द से कष्ट किये जाते हैं, वह आश्रम है।” ऐसे कष्ट को तप कहते हैं। व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिए तप करना ही पड़ता है। जीवन में सफलता प्राप्त करना मनुष्य का लक्ष्य है। मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य को सुगमता से प्राप्त कर सके इस हेतु ऋषियों ने मनुष्य जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के लिए आश्रम चतुष्टय की व्यवस्था दी। हम यहाँ इन चारों आश्रमों की क्रमशः जानकारी प्राप्त करेंगे।

1. ब्रह्मचर्याश्रम —

आयु के प्रथम पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम के होते हैं। शिशु अवस्था (6 से 8 वर्ष) घर में ही बीतती है। इसके बाद वह गुरुकुल में जाता है। वहाँ उसका उपनयन संस्कार होता है। इस संस्कार से ही उसका ब्रह्मचर्य आश्रम शुरू होता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म में चर्या। चर्या का अर्थ होता है, आचरण की पद्धति। ब्रह्म को प्राप्त करने हेतु जो-जो आचरण करना होता है, वह ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम के प्रमुख लक्षणों में गुरु गृहवास करना, भिक्षा माँगकर लाना, संयम धारण करना, गुरु की सेवा करना, वेदों का अध्ययन करना तथा अनुशासन और नियम पालन करना। इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम कठोर व्रत, तप और विद्याध्ययन का काल है। यह चरित्र और क्षमताओं को विकसित करने का काल है। यह भविष्य की चुनौतियों को स्वीकारने की सामर्थ्य बढ़ाने का आश्रम है।

2. गृहस्थाश्रम —

समावर्तन संस्कार का उपदेश प्राप्त कर व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। गृहस्थाश्रम संसारिक दायित्वों को पूर्ण करने का आश्रम है। गृहस्थ की परिभाषा है— “गृहेषु दारेषु तिष्ठति अभिरमते इति गृहस्थः” अर्थात् जो घर में रहता है और

परिवार के दायित्वों को निभाता है, वह गृहस्थ है। गृहस्थ के दायित्व हैं – विवाह करना, ऋणत्रय (पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण) से मुक्ति पाना, पंचयज्ञ (ऋषियज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ व पितृयज्ञ) करना, अतिथि सेवा करना, यज्ञ, दान व तप का पालन करना, अर्थार्जन करना और सांसारिक सुखों का उपभोग करना, अपने परिवारजनों का भरण, पोषण एवं रक्षण करते हुए अपने सामाजिक दायित्वों को निभाना, पितृऋण से मुक्ति के लिए समर्थ सन्तान को जन्म देकर समाज को एक सुयोग्य नागरिक उपलब्ध करवाना।

गृहस्थाश्रम शेष तीनों आश्रमों – ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम को पालता है। सार्वजनिक व्यवस्थाओं में अपना योगदान देता है। इसीलिए गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में मुख्य है, कहा भी है – धन्योगृहस्थाश्रमः।

3. वानप्रस्थाश्रम –

वानप्रस्थ आश्रम आयु का तीसरा पड़ाव है। सन्तानें बड़ी हो जाती हैं। पुत्र-पुत्रियों का विवाह हो जाता है। तीसरी पीढ़ी का आगमन होता है। शरीर थकने लगता है, इन्द्रियों कमजोर हो जाती हैं। सभी कर्तव्यों की पूर्ति कर व्यक्ति सन्तोष का अनुभव करता है। अब वह अपने सांसारिक दायित्वों को अगली पीढ़ी को सौंप कर, विरक्ति की साधना हेतु गृहत्याग करना चाहता है। वानप्रस्थ का अर्थ ही है, वन की ओर स्थान। आज के समय में वन गमन के स्थान पर घर में रहते हुए भी सामाजिक कार्यों को करना, इसकी युगानुकूल परिभाषा है।

वानप्रस्थ के लक्षण हैं – सांसारिक दायित्वों के साथ अधिकारों का भी त्याग करना, धर्माचरण करना, सादगी व संयमपूर्ण जीवन जीना, स्वाध्याय करना। तितिक्षा (अर्थात् विपरीत स्थितियों में भी कार्य करते रहना), तप (अर्थात् किसी उद्देश्य विशेष की प्राप्ति हेतु किये जाने वाला दैहिक कष्ट), वैराग्य अर्थात् सांसारिक पदार्थों में आसक्ति न रखना और मुमुक्षा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा। वानप्रस्थाश्रम निवृत्ति का, मन व इन्द्रियों को विश्राम देने का, परिवार एवं समाज को अपने अनुभवों के आधार पर मार्गदर्शन करने का तथा सांसारिक दायित्वों व अधिकारों से मुक्त होकर सबके कल्याण हेतु तपश्चर्या करने का काल है।

4. संन्यासाश्रम –

वानप्रस्थ में जब तप, तितिक्षा, वैराग्य और मुमुक्षा परिपक्व हो जाते हैं, तब व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तो सबके लिए है, परन्तु संन्यास सबके लिए नहीं है, केवल उनके लिए हैं जिन्हें तीव्र वैराग्य उत्पन्न हुआ हो। बिना वैराग्य के संन्यास व्यर्थ है।

संन्यास आश्रम की मुख्य बातें हैं — संन्यासी अपना नाम, कुल, गोत्र, धन-संपत्ति, सगे-सम्बन्धी आदि सब कुछ त्याग देता है। अब भिक्षापात्र, कौपीन ओर दण्ड ही उसकी सम्पत्ति हैं। उसकी आवश्यकताएँ अति अल्प हैं। ‘करतल भिक्षा तरुतल वास’ अर्थात् हथेली में भिक्षा लेना और वृक्ष के नीचे रहना, अब उसका आदर्श है। वह अनिकेत (अर्थात् जिसका कोई घर नहीं) व निरग्नि (अर्थात् जिसके लिए अग्नि नहीं) होता है। अग्नि नहीं का अर्थ है अब उसे भोजन नहीं पकाना है। ये दोनों संन्यास के विशेष लक्षण हैं। अर्थात् संन्यासी के लिए भोजन पकाना व घर में वास करना मना है। संन्यासी का एकमेव कार्य तप है। प्रारम्भ में एकान्त में रहकर उग्र तप तथा बाद में देशाटन कर लोक कल्याण हेतु उपेक्ष करना उसका काम है।

आज आधुनिकता की दौड़ में हम इस श्रेष्ठ आश्रम व्यवस्था को भी छोड़ते जा रहे हैं। 25 वर्ष तक चलने वाला ब्रह्मचर्य आश्रम कैरियर बनाने की स्पर्धा में 30-35 वर्ष की आयु तक चलता है। अतः अधिक आयु में विवाह होता है और गृहस्थाश्रम शुरू होता है और लगभग जीवन भर चलता है। वानप्रस्थ और संन्यास तो आते ही नहीं, गृहस्थी में ही परलोकगामी हो जाता है। चारों आश्रम जीने वाले विरले ही होते हैं।

हमें विचार करना चाहिए कि क्या हम भारतीय समाज व्यवस्था की एक अद्भुत और विशिष्ट रचना को छोड़कर उस अज्ञानी जैसा व्यवहार तो नहीं कर रहे हैं, जो बहुमूल्य हीरे-मोती फेंक रहा है और साधारण कंकड़-पत्थर एकत्र करने में सम्पूर्ण जीवन गँवा रहा है।

भारतीय समाज में नारी का स्थान

अध्यात्म प्रधान भारत में नारी शक्ति को सर्वाधिक सम्मान दिया गया है। इस देश में साधु-संन्यासी, विद्वान, बालक-वृद्ध एवं सदगृहस्थ सभी स्त्री को माता कहकर पुकारते हैं। गृहस्थों के घर में स्त्रियाँ लक्ष्मी समझी जाती हैं। जिस घर में स्त्री नहीं रहती, वह घर नहीं कहलाता। घर तो गृहिणी से ही बनता है, इसीलिए कहा गया है —

‘न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।’

अर्थात् घर को घर नहीं कहते, जहाँ गृहिणी रहती है वही घर कहलाता है।

अर्द्धनारीश्वर की मान्यता -

भगवान शिव के अनेक रूपों में एक रूप अर्द्धनारीश्वर का है जिसके द्वारा यह समझाने का प्रयत्न किया गया है कि स्त्री व पुरुष दोनों आधे-आधे हैं, वे

मिलकर एक होते हैं -

स्वेच्छामय स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूवहि।

स्त्री रूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥

मान्यता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने स्वयं को दो रूपों में विभक्त किया, आधे से वे पुरुष तथा आधे से नारी हो गये। वामभाग से स्त्री और दक्षिण भाग से पुरुष हुए। धर्मप्राण भारत में वेद, पुराण, स्मृति, प्राचीन संस्कृति एवं प्राकृतिक विज्ञान में स्त्रियों को पुरुषों की अर्धांगिनी माना है। हमारी संस्कृति में किसी भी धार्मिक, सामाजिक तथा लौकिक कार्यों में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य है। धार्मिक कार्यों के समय स्त्री व पुरुष के उत्तरीय वस्त्रों के छोरों से ग्रन्थिबंधन किया जाता है जिसके बिना धार्मिक यज्ञ-यज्ञादि कर्म सम्पन्न नहीं किये जाते।

हमारी संस्कृति में नारी को पूज्य माना गया है। जिस घर में नारी को सम्मान मिलता है, वहाँ देवों की कृपा बनी रहती है और जहाँ आदर नहीं होता वहाँ सदैव कलह रहता है -

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तुन पूज्यन्ते सर्वास्तित्राफलाः क्रियाः॥’

अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का समादर है, उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं और जिस कुल में ऐसा नहीं है, वहाँ समस्त यज्ञादि क्रियाएँ व्यर्थ जाती हैं।

दुर्गासप्तशती में देवी दुर्गा की महिमा का वर्णन करने वाला श्लोक कहता है—

विद्याः समस्तास्तव देविभेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

त्वयैकया पूरितम्ब यैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

हे देवी! समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही स्वरूप भेद हैं। जगत में जितनी स्त्रियाँ हैं, सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्बे। एक मात्र तुमसे यह सारा विश्व व्याप्त है। तुम्हारी क्या स्तुति हो सकती है? तुम स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे और परा वाणी से परे हो।

नारी मातृस्वरूपा है -

हमारी संस्कृति सिखाती है ‘मातृवत् परदारेषु’ अर्थात् पराई स्त्री माँ के समान है। एक स्त्री- ‘गर्भधारणपोषाद्धि ततो माता गरीयसी’ अपनी सन्तान को नौ-दस माह तक अपने गर्भ में धारण कर, अनेक कष्ट सह कर उसे जन्म देती है। इसीलिए माता की पदवी सबसे ऊँची है।

इस नैसर्गिक दायित्व की पूर्ति के लिए वह स्वेच्छा से अपनी शारीरिक व मानसिक शक्तियों का सद्व्यय करती है। यदि नारी कुशल पुरुष का निर्माण करने की अपनी विशिष्टता को भूल जाये तो इस जगत का विनाश हो जायेगा। माता की महिमा में ही कहा गया है कि पुत्र कपूत हो सकता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं हो सकती — “कुपुत्रो जायेत् क्वचदपि कुमाता न भवति”। नारी रूपी माता का सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य है।

माता प्रथम गुरु है —

भारतीय संस्कृति में ‘माता प्रथमो गुरुः’ कहा गया है। सन्तान माँ की कोख से ही संस्कारों के माध्यम से सीखती है। उस समय माता जो-जो क्रिया-कलाप करती है, उसके संस्कार सन्तान पर होते हैं। अभिमन्यु एवं अष्टावक्र के उदाहरणों से हम परिचित हैं जिन्होंने माता की कोख में रहते हुए ही सीखा था।

माता की महत्ता को बताने वाला श्लोक कहता है कि अन्य गुरुओं से माता का गौरव बहुत अधिक है —

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥

अर्थात् दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य है। सौ आचार्यों से एक पिता श्रेष्ठ है और हजार पिताओं से एक माता श्रेष्ठ है।

एक गुरु के रूप में माता मदालसा का जीवन आदर्श उदाहरण है। उन्होंने लोरियाँ सुना-सुना कर अपने राजपुत्रों को श्रेष्ठतम जीवन बताया। ऐसी ही एक लोरी का अंश यह है —

“शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार मायापरिवर्जितोऽसि।

संसार स्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मदालसा वाक्यमुवाचपुत्रम्॥”

(हे पुत्र! तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, संसार की माया से रहित है। यह संसार स्वप्न मात्र है। उठ, जाग्रत हो, मोहनिद्रा का त्याग कर। तू सच्चिदानन्द आत्मा है। मदालसा के पुत्र को कहे गये ये वाक्य कितनी निर्भयता प्रदान करने वाले हैं)

नारी घर की साम्राज्ञी है —

स्त्री जब विवाह कर ससुराल आती है, तब उस वधू को आशीर्वाद दिया जाता है —

“साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रयांभव।

ननन्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु॥

(वधू तुम घर में सास, ससुर, ननद और देवर, सबके हृदय की महारानी बनो। सबको अपने प्रेम, सेवा और सद्व्यवहार से जीत लो।)

स्त्री घर की साम्राज्ञी है किन्तु वह साम्राज्ञी होते हुए भी स्नेहमयी माता और आदर्श गृहिणी है। सनातन मातृत्व ही उसका स्वरूप है। भगवान राम-कृष्ण, भीष्म-युधिष्ठिर, कृष्ण-अर्जुन, बुद्ध-महावीर, शंकर-रामानुज, नानक-तुलसी और गाँधी-मालवीय जैसे महापुरुषों को नारी ने ही जन्म दिया है। इसलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का सम्मान अधिक होता है। व्यवहार में भी पहले स्त्री का नाम व बाद में पुरुष का नाम आता है जैसे - सीता-राम, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर और माता-पिता बोला जाता है।

नारी त्रिदेवी स्वरूपा है -

भारतीय समाज ने नारी की रणरंगिनी मुण्डमालिनी काली के रूप में, सिंहवाहिनी महिषमर्दिनी दुर्गा के रूप में, धन की देवी लक्ष्मी के रूप में तथा विद्या की देवी सरस्वती के रूप में पूजा की है सभी रूपों में वह माँ ही है। स्नेहमयी-माता और प्रेममयी पत्नी यदि वीरांगना बनकर रण में उतरेगी तो वह आततायियों के हाथ से सबकी रक्षा करके समाज और देश का अपरिमित मंगल ही करेगी।

आज आधुनिकता की दौड़ में हमने अपनी सांस्कृतिक दृष्टि छोड़ दी है और पश्चिम की भोगवादी दृष्टि अपना ली है। टी०वी० और सिनेमा देख-देखकर हम भी नारी को केवल भोग्या मानने लगे हैं। इस कुदृष्टि का ही परिणाम है कि प्रतिदिन समाचारपत्र स्त्रियों के प्रति अत्याचार की घटनाओं के समाचारों से भरे रहते हैं। हमें नारी के सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए नारी के प्रति देखने की दृष्टि बदलनी पड़ेगी। जब नारी को हम माता-बहन के रूप में देखेंगे, उसे पूज्या, देवीस्वरूपा व गुरु रूपा स्वीकारेंगे तभी नारी समाजधारिणी बन सकेगी।

‘संस्कार’ का अर्थ होता है शुद्ध करना, स्वच्छ करना, चमकाना, आंतरिक रूप को प्रकट करना और कमियों को दूर करना। संस्कार, संस्कृति का ही वाचक शब्द है। इसके तीन अंग हैं (1) दोषापनयन (दोषों को दूर करना), (2) गुणाधान (गुणों को बढ़ाना, उभारना), और (3) हीनांगपूर्ति (जो न्यूनता है उसे दूर करना)। तंत्र वार्तिककार श्रीभट्टपाद के अनुसार ‘योग्यताः चापधानाः क्रियाः संस्काराः इत्युच्यते’ अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं।

सरल शब्दों में, जिस क्रिया से मनुष्य में अच्छे गुणों का विकास हो और बुराइयाँ दूर हों, वह संस्कार हैं। मनुष्य को मानवता सिखाने वाले ऐसे अनेक गुण हैं। इन्हें हम संस्कार, जीवनमूल्य, सद्गुण, मानवीय मूल्य आदि नामों से जानते हैं। ये गुण किसी एक धर्म, जाति, सम्प्रदाय या देश के लोगों के लिए नहीं अपितु संसार के समस्त मनुष्यों के उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं। विकास भी केवल अपने लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज समस्त मानव एवं प्रकृति के हित के लिए है। आइये, ऐसे कुछ गुणों का परिचय प्राप्त करते हैं –

त्याग

रहिमन पर उपकार के करत न यारी बीचा।

माँस दियो शिबि भूप ने दीन्हो हाड़ दधीचा॥ अब्दुलरहीम खानखाना

किसी अच्छे उद्देश्य के लिए अपना सुख या लाभ छोड़ने की क्रिया त्याग कहलाती है। त्याग उसी वस्तु का होता है जो आपको प्राप्त है और जिस पर आप अधिकार रखने में सक्षम भी हैं। किसी वस्तु का छिन जाना त्याग नहीं है, प्रसन्नतापूर्वक छोड़ देना त्याग है। कोई भी वस्तु या जीवन-सुख हमें प्रकृति और समाज के अनेक लोगों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग से ही प्राप्त होते हैं। अतः उन पर केवल हमारा अधिकार है, ऐसा न सोच कर, “यह प्राप्ति सबके सहयोग से है अतः उनका और जिन्हें इसकी मुझसे भी अधिक आवश्यकता है उन सबका भी इन पर अधिकार है” इसलिए अपनी आवश्यकता कम करना ही त्याग है। गीता में भगवान ने ‘मैं कर रहा हूँ या मैंने किया है’ इस भाव को त्याग कर अपने कर्म के फल को ईश्वर के अधीन कर देने का उपदेश दिया है। ईशावास्य उपनिषद् भी बिना आसक्ति के उपयोग करने का निर्देश देता है। अपने ही देश के कुछ उदाहरण देखें –

- प्राचीनकाल में एक महान् ऋषि हुए हैं, दधीचि। सुदीर्घ तपस्या द्वारा उन्होंने विशेष शक्ति प्राप्त कर ली थी। वृत्रासुर नामक दैत्य ने देवताओं को परास्त कर दिया। वह केवल किसी तपोधन की हड्डियों द्वारा ही मारा जा सकता था लेकिन अस्थियां दे देने पर किसी का भी जीवित रहना तो असंभव है। देवताओं ने महर्षि दधीचि से अस्थियों की याचना की। लोकोपकार के लिए महर्षि ने तत्काल योगबल से देह विसर्जित कर दी। अस्थियां देवराज इन्द्र को सौंप दीं। उनकी अस्थियों से विश्वकर्मा ने विशेष अस्त्र 'वज्र' का निर्माण किया। महर्षि दधीच के महान् त्याग से वृत्रासुर का वध हो सका।
- डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार जो बाद में विश्व के सबसे बड़े स्वयंसेवी संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक बने, बीसवीं शताब्दी के आरंभ में कलकत्ता में चिकित्साशास्त्र पढ़कर डॉक्टर बने थे। घर की आर्थिक दशा अच्छी न थी। तब डॉक्टरी की पढ़ाई भी गिने-चुने लोग ही कर पाते थे। स्वाभाविक ही होता कि वे रोगियों की चिकित्सा में अपनी शिक्षा का उपयोग कर परिवार की दीन दशा सुधारते। लेकिन अंग्रेजी दासता से भारत माता की मुक्ति के उस समय तक प्रचलित सभी उपायों को अपर्याप्त अनुभव कर उन्होंने अपने परिवार के लिए जीने की आवश्यकता त्यागकर देश के लिए जीने का संकल्प लिया। जन्मजात देशभक्त इस महापुरुष ने आजीवन अविवाहित रहकर बगैर अपनी आजीविका की चिंता किए बिना एक महान् संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नींव रखी। राष्ट्र सेवा के लिए निजी जीवन के सुखों के त्याग का यह उदाहरण बाद में अनेक कार्यकर्ताओं का आदर्श बना और वे भी जीवनव्रती कार्यकर्ता (प्रचारक) बन कर राष्ट्र सेवा व समाज संगठन में जुटे। यह परम्परा आज भी चली आ रही है।
- ऐसा ही उदाहरण सुभाष बाबू का है जिन्होंने देश सेवा के लिए आई.सी.एस. बनने का अवसर त्याग दिया। महात्मा गांधी ने आजीवन आधी धोती में जीवनयापन कर, वकालत का मोह त्याग कर देश सेवा की।
- हरिद्वार स्थित भारत माता मंदिर के संस्थापक ब्रह्मलीन स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि जी ने भानपुरा पीठ के शंकराचार्य पद का त्याग इसलिए कर दिया कि वे हिन्दु समाज के इस परम प्रतिष्ठित पद की परम्परागत मर्यादाओं का पालन करते हुए पूरी सहजता से समाज सेवा एवं धर्म जागरण का कार्य नहीं कर पा रहे थे।

- त्याग के इन बड़े उदाहरणों में हम उन बच्चों का उदाहरण भी स्मरण करें जो अपने बचपन की कपड़े, मिठाई या खिलौनों की इच्छाओं का त्याग कर वर्षभर पैसे बचाते हैं और उस बचत को बसंत पंचमी पर समर्पण कार्यक्रम में उन वनवासी बच्चों के लिए समर्पित कर देते हैं जिनसे वे कभी मिले भी नहीं होंगे पर उन्हें अपना बंधु ही मानते हैं।

तप

तप बल रचइ प्रपंच बिधाता। तप बल बिस्नु सकल जगत्राता॥

तप बल संभु करहिं संघारा। तप बल शेष धरइ महि भारा॥

—गोस्वामी तुलसीदास जी

किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति और ध्येय सिद्धि के लिए अपनी इन्द्रियों की आवश्यकताओं को संयमित कर लक्ष्य के प्रति एकाग्र हो, उसकी प्राप्ति तक अटल रहना ‘तप’ है। तप वह उत्कट साधना है जिससे भविष्य भी बदला जा सकता है। रामचरित मानस में देवर्षि नारद हिमालय पुत्री पार्वती के भविष्य को अनुकूल बनाने के लिए कहते हैं ‘जो तप करहिं कुमारि तुम्हारी । भावी मेट सकहिं त्रिपुरारी।’

तप कायिक, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकार का होता है। अहिंसा, सत्य, शौच और स्वाध्याय गीता में वर्णित तप के ही प्रकार हैं। तप और स्वाध्याय महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग के दूसरे अंग ‘नियम’ के पाँच विभागों शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान में भी सम्मिलित है। छान्दोग्य उपनिषद् में ‘तप’ को धर्मरूपी वृक्ष का द्वितीय स्कंध बताया है।

साधारण शब्दों में हम तप को ‘लक्ष्य के प्रति एकाग्रता और इन्द्रियों को संयम में रखकर अविरत साधना’ कह सकते हैं।

- बालक ध्रुव की पाँच वर्ष की अवस्था थी। एक दिन पिता उत्तानपाद की गोदी में छोटे भाई उत्तम को बैठे देखा तो ध्रुव के मन में भी पिता की गोद में बैठने की सहज इच्छा हुई। उत्तम की माता सुरुचि को सुनीति के पुत्र ध्रुव को तिरस्कारपूर्वक पिता की गोद से उतार दिया। ध्रुव रोते हुए माँ सुनीति के पास पहुँचे। घटना सुनकर सुनीति ने आँसू पोंछते हुए समझाया “तुम ऐसा स्थान क्यों नहीं प्राप्त करते जहाँ से कोई तुम्हें कभी भी न हटा सके। वह स्थान है परम पिता श्री हरि की अनन्त वात्सल्यमय गोद।” प्रेरणा अचूक सिद्ध हुई और ध्रुव निकल पड़ा घने जंगल की ओर तपस्या करके श्रीहरि को प्रसन्न करने। हिंसक पशुओं से भरा

भयानक जंगल, नदी, पर्वत लांघता ध्रुव चला जा रहा था, न भय न संशय। मार्ग में सप्तर्षि मिले उसे समझाया कि तप करना बहुत कठिन है तुम लौट जाओ। ध्रुव का निश्चय अटल था। देवर्षि नारद ने ध्रुव को 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर मंत्र का जप करने को कहा। रात-दिन ध्रुव अविचल भाव से तप करने लगा। वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म ऋतुएं आती रहीं- जाती रहीं। वह न इनके सौन्दर्य से आकर्षित हुआ न कष्टों से विचलित। अन्ततः श्रीहरि विष्णु को प्रकट होना ही पड़ा और 'ध्रुव' अडिगता का पर्याय बन गया। इस बाल तपस्वी को हम आज भी ध्रुव तारे के रूप में स्मरण करते हैं।

● बात दसवीं शताब्दी की है। वाचस्पति मिश्र वेदान्त के महान् ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र की टीका कर रहे थे। उनका यह स्वाध्याय तप वर्षों चलने वाला था। उनका विवाह भामती से हुआ था। मिश्र जी अपने स्वाध्याय में ऐसे डूबे रहते कि घर-गृहस्थी के सामान्य कर्तव्यों की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। उनका ग्रन्थ पूर्ण होने तक उनकी आयु 80 वर्ष हो चुकी थी। ग्रन्थ पूर्ण होने पर उन्हें ध्यान आया कि इतने दिनों उनकी भोजनादि अत्यावश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था कौन करता रहा? नव वधू के रूप में आयी थी तब से ही भामती मूंज की रस्सी बंट कर घर खर्च चलाती थी। 'इस देवी के त्याग व तप से ही मेरा यह देश, धर्म व समाज का मार्गदर्शन करने वाला वाङ्मयी तप पूर्ण हुआ है' ऐसा विचार कर कृतज्ञतास्वरूप उन्होंने इस ग्रन्थ का नामकरण ही 'भामती' कर दिया। लक्ष्य के प्रति ऐसी एकाग्रता ही तप है।

● तप जंगल में जाकर की जाने वाली कठोर साधना ही है ऐसा भी नहीं है। बिहार में गया के निकट गहलौर गाँव में एक निर्धन श्रमिक रहता था। नाम था दशरथ मांझी। गाँव के पास एक पहाड़ी थी उस पार जाने के लिए सबको बहुत कठिनाई होती थी। दशरथ मांझी ने संकल्प लिया और निरंतर 25 फुट ऊँचे पहाड़ काटते हुए अकेले ही 360 फुट लम्बी व 30 फुट चौड़ी सड़क बना दी। इस अद्भुत साधना के परिणामस्वरूप आतरी से बजीरगंज की दूरी 55 कि.मी. से 15 कि.मी. रह गई। ऐसे ध्येयनिष्ठ श्रमयोगी को हम 'माउंटन मेन' (पर्वत-पुरुष) के नाम से जानते हैं। यह भी एक तप ही है।

● हम खेल-कला-शिक्षा आदि किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्ट सफलता प्राप्त करने वालों की जीवनी पढ़ें तो ध्यान आता है कि वे अपने लक्ष्य के लिए प्रयास तप के रूप में अचल, अनवरत, एकाग्र होकर करते हैं।

पुराणों में अनेक प्रसंग हैं जिनमें राक्षसों द्वारा भी उग्र तप करने का उल्लेख मिलता है। ऐसा तप जो किसी अन्य को पराजित करने, कष्ट देने अथवा सुख-वैभव या अधिकार प्राप्ति के लिए किया जाता है तामसिक तप है। वास्तविक तप समाजोद्धार, परोपकार एवं आत्मोत्कर्ष के लिए किया जाता है।

संयम

**संयम अंकुश धरि चढ़ो, मन मतंग की पीठ।
नहीं तो रौंदे पग तले, मनुआ बड़ो ही ढीठ॥**

उचित-अनुचित का विवेक रखते हुए मन में उत्पन्न इच्छाओं को नियंत्रण में रखना संयम है। संयम से हमारी इन्द्रियां स्वाभाविक रूप से नियंत्रण में रहती हैं। उन्हें बलात रोकना दमन है। यह संयम से भिन्न है। पातंजल योग सूत्र में वर्णित अष्टांग योग में दूसरे अंग नियम का उप अंग तप है। इसका आरंभिक पद 'संयम' है।

- आयु के अनुसार संयम के भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं जैसे एक छोटे बच्चे के सामने कई मीठी गोलियां रखी हैं उसे उनमें से एक लेने को कहें और वह एक से अधिक लेने की इच्छा या प्रयास भी न करे तो यह संयम है। घर के सारे लोग दूरदर्शन पर कोई रोचक धारावाहिक देख रहे हों पर पास के कक्ष में ही कोई किशोर उसे देखने की इच्छा भी न करते हुए पढ़ाई में जुटा रहे, यह संयम है। बहुत थके हों पर घर आए अतिथि को असुविधा न हो इसलिए उनके जागने से पहले जाग जाना और सोने के बाद सोना, संयम है।

- आदिलशाह ने अफजल खान को मराठों से संघर्ष के लिये भेजा। उसके पास अपार सेना थी। वह चाहता था शिवाजी उससे लड़ने के लिए मैदानी भूमि पर आये उन्हें उकसाने के लिये शिवाजी की कुलदेवी तुलजा भवानी के मंदिर सहित कई धर्मस्थलों को नष्ट-भ्रष्ट करना आरंभ कर दिया। स्थिति यहाँ तक जा पहुँची कि लोगों में 'शिवाजी डर गए। कायर हैं। ये कैसे हिन्दू धर्म रक्षक हैं?' जैसी चर्चाएँ शुरू हो गईं किन्तु शिवाजी उत्तेजित नहीं हुए। अन्ततः जावली के घने जंगलों में अफजल खाँ को आना ही पड़ा जहाँ शिवाजी ने उचित योजना, सतर्कता और वीरता से सुअवसर पाकर उसका वध कर दिया और अपनी सेना को हानि पहुँचाए बिना विजयी हुए। यह शक्ति सम्पन्न होकर भी संयमित होने का श्रेष्ठ उदाहरण है।

- संत तिरुवल्लुवर भी महात्मा कबीर की भांति कपड़ा बुनने का कार्य करते थे। एक बार उनके पास एक धनिक व्यक्ति का पुत्र साड़ी खरीदने आया। साड़ी

का मूल्य पूछने पर सन्त ने उसे उचित मूल्य बताया। उसने साड़ी फाड़ी और आधी की कीमत पूछी। संत ने मूल्य आधा कर दिया। उसने साड़ी के और टुकड़े कर दिए। सन्त उसी अनुपात में मूल्य कम करते गए। एक स्थिति ऐसी आई जब टुकड़े बहुत छोटे हो गए। संत ने कहा “अब इनका कोई मूल्य नहीं रहा।” धनिक पुत्र बोला “ठीक है मैंने आपकी साड़ी नष्ट कर दी आप इसका पूर्ण मूल्य ले लें।” संत तिरुवल्लुवर बोले, “बेटा, अब यह किसी के उपयोग की न रही। फिर तुम इसके बनाने में कपास उगाने वाले, सूत कातने वाले, बुनाई करने वाले, रंगने वाले, न जाने कितने लोगों का सहयोग है। उन सबके इस व्यर्थ हो गए श्रम का मूल्य तुम नहीं चुका सकते।” संत की सीख से धनिक पुत्र का जीवन बदल गया। अपनी वस्तु का, समय का, दुरुपयोग होते देख भी शांत बने रह कर शिक्षा देने में सन्त जी का अनुपम संयम प्रकट होता है।

- महाभारत में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर शिशुपाल ने भरी सभा में श्रीकृष्ण को सौ अपशब्द कहे पर कृष्ण क्रोधित न हुए और उसके दुर्व्यवहार की सीमा पार होने तक संयमित बने रहे। फिर उसे दण्ड दिया।

- एक ताजा उदाहरण 22 जुलाई 2019 को प्रक्षेपित चन्द्रयान-2 भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में एक ऐसा महत्वपूर्ण अभियान था जिस पर सारे विश्व की दृष्टि लगी हुई थी। यह राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का विषय था लेकिन अंतिम चरण में चंद्रमा के अत्यन्त पास पहुंचकर भी वह निश्चित योजना अनुसार न उतर सका। अभियान के मुख्य वैज्ञानिक कैलास वटिवु शिवन् प्रधानमंत्री के सामने फफक-फफक कर रो पड़े लेकिन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने उन्हें निराश न होकर सफलता के निकटतम जाने की बधाई दी, ढाढस बंधाया। उनका यह संयमित व्यवहार विश्वभर में आदर्श की छाप छोड़ गया।

- सामान्य जीवन में किसी व्रत को पूर्ण करते समय लक्ष्य से भटकाने वाले लोभ-लालच, आकर्षणों से प्रभावित न होते हुए संकल्प की पूर्ति में जुटे रहना संयम है, जो हमें अभीष्ट कार्य में सिद्धि प्रदान करने में सहायक होता है।

सत्य

दोहा - सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे सांच है ताके हिरदे आप॥

सत्य अर्थात् क्या? जिसके ठीक होने में कोई सन्देह न हो, जो यथार्थ हो, विशुद्ध हो, न्याय और धर्म के अनुकूल हो। शास्त्रों में सत्य को परमात्मा का स्वरूप

कहा गया है। सारे सद्गुणों में सत्य की प्रशंसा सबसे अधिक की गई है। कहा गया है 'सत्यं परं धीमहि' सत्य ही परम आराध्य है। पतंजलि वर्णित अष्टांग योग में प्रथम अंग है 'यम।' यम के पाँच विभाग हैं — अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। सत्य का महत्त्व गीता में इस प्रकार बताया गया है, कि 'इन्द्रियों और अन्तःकरण से जैसा कुछ देखा, सुना और अनुभव किया गया हो दूसरों को ठीक वैसा ही समझाने के लिए, कपट छोड़कर, जो यथासंभव प्रिय और हितकर वाणी का उच्चारण किया जाता है उसे सत्य कहते हैं।' सत्य की गणना मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों में भी की गई है।

● 'सत्य' शब्द सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र का नाम सबसे पहले स्मरण आता है। स्वप्न में महर्षि विश्वामित्र को अपना राज्य दान में दे चुके हरिश्चन्द्र ने प्रातः अपना अयोध्या का राज्य ही महर्षि को दान में नहीं दिया बल्कि उसकी दक्षिणा देने के लिए काशी में अपने पुत्र रोहिताश्व, पत्नी तारा व अपने आपको भी बेच दिया पर अपने वचन की सत्यता की रक्षा की। उनके ही वंशज श्रीराम ने पिता के वचन को सत्य करने हेतु वनवास स्वीकार किया। रघुवंश में सत्य धर्म के पालक अनेक राजा हुए।

● लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तब विद्यार्थी ही थे। एक बार उनकी कक्षा में किसी ने मूंगफली खाकर छिलके वहीं फेंक दिए। शिक्षक के पूछने पर कोई अपनी गलती मानने को तैयार न हुआ तो शिक्षक सब को दो-दो बेंत लगाने की सजा देने लगे। तिलक जी का क्रम आया तो वे बिना हाथ बढ़ाए दृढ़ता से बोले "मैंने मूंगफली नहीं खायी है मैं सजा भी नहीं सहूँगा।" उनकी सत्य निष्ठा से शिक्षक अप्रभावित न रह सके।

● न्यायशास्त्री श्रीराम शास्त्री महाराष्ट्र के पुणे में राज्य के प्रधान न्यायाधीश थे। एक बार उनके सामने एक ऐसा प्रकरण आया जिसमें एक प्रभावशाली राजपुरुष राघोबा पर अपने भतीजे पेशवा नारायणराव की हत्या करवा देने का आरोप सिद्ध हो चुका था। सत्ता हथियाने के कुत्सित उद्देश्य से की गई यह हत्या जिस राघोबा ने की थी, वह किसी भी व्यक्ति के टुकड़े-टुकड़े करवा सकता था। निर्भीक शास्त्रीजी ने सत्य का आश्रय लिया और राघोबा से भयभीत हुए बिना उसे मृत्युदण्ड सुना दिया। प्राणों की भी चिंता न करते हुए ऐसे प्रभावशाली क्रूर अपराधी को दण्ड देने का साहस शास्त्रीजी की सत्यनिष्ठा का उत्तम उदाहरण है।

- पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपने स्वभाव अनुसार रेल की तीसरी श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक पू० माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर 'श्री गुरुजी' उसी रेल में द्वितीय श्रेणी में थे। दीनदयाल जी को उनसे कुछ आवश्यक चर्चा करनी थी इसलिए एक-दो स्टेशन पार होने तक वे श्रीगुरुजी के डिब्बे में रहे। चर्चा पूरी हो जाने के बाद टिकिट निरीक्षक से उतनी दूरी का ऊँचे दर्जे का किराया लेने का आग्रह किया तो वह भी अवाक् रह गया, पर दीनदयाल जी उसे उचित किराया देकर रसीद प्राप्त करके ही माने।
- सत्य लोकोपकारी और प्रिय होना चाहिए। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' हमें सत्य को इस प्रकार कहना चाहिए जिससे उसका अनुचित प्रभाव न हो। सत्यवादी होने का अभिमान यदि इस विचार से भटका दे तो ऐसा सत्य उचित उद्देश्य को पूर्ण नहीं करता। सुभाषित है—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्य दुरात्मनाम्॥

सज्जन लोग मन-वचन कर्म से एक समान व्यवहार करते हैं। यही सत्याचरण है। जबकि दुष्ट लोग कहते कुछ हैं, मन में कुछ और सोचते हैं और करते कुछ और ही हैं।

स्नेह

दोहा- जहाँ नेह तहाँ नेम नहिं, तहाँ न विधि व्यवहार।

नेह मगन जब हम भए, कौन गिने तिथिवार॥

किसी के प्रति हार्दिक रूप से अपनेपन का भाव, अनुराग, स्नेह है। स्नेह की प्रगाढ़ता सामान्य नियमों, विधि-निषेधों, व्यवहार आदि के परे अनन्य आत्मीयता का भाव जगाती है। किसी के सुख दुःख के प्रति गहरी संवेदनशीलता रखते हुए प्रेम प्रकट करना स्नेह है। स्नेह परस्पर जोड़ने वाले निःस्वार्थ भाव को ही कहते हैं।

- महाभारत की कथा है श्रीकृष्ण राजसभा में पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने पहुँचे किन्तु उसका राजसी भोजन त्याग कर विदुर जी के घर शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करने जा पहुँचे। विदुरानी उनके स्नेह में इतनी विभोर हो गई कि केले खिलाती हुई केले की अपेक्षा केले के छिलके उन्हें पकड़ाती गई और श्रीकृष्ण वही खाते रहे।

● भगिनी निवेदिता (मार्गट नोबुल) स्वामी विवेकानन्द की अनुमति से भारत आकर पहली बार एक विदेशी सहेली के साथ स्वामी रामकृष्ण परमहंस की सहधर्मिणी सारदा माँ से मिलने पहुँची तो अत्यन्त संकोच था — ‘पता नहीं इतने नियम धर्म से रहने वाली माँ सारदा हमें विदेशी जान कर मिले भी या नहीं।’ सारदा माँ तो साक्षात् स्नेह मूर्ति थीं। वे इन विदेशी बालाओं से प्रेमपूर्वक मिली और अपने पास बिठाकर स्वयं भोजन भी कराया। निवेदिता आजीवन उस स्नेहमय दिन को न भुला सकीं। अपनी दैनंदिनी में उस दिन के लिए लिखा— डे ऑफ डेज (Day of days)।

● महात्मा ज्योतिबा फुले और उनकी धर्मपत्नी सावित्री एक दिन कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें कूड़े के ढेर पर एक नवजात बालक रोता मिला। एक कौआ उसके नन्हें पैरों पर बार-बार चोंच मार रहा था। आस-पास दृष्टि डालने पर, आवाज लगाने पर भी जब कोई न दिखा तो वे समझ गए कि बालक अनाथ है। सावित्री ने उसे स्नेह से उठाया और बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन किया। भगवान का प्रसाद मान उसका नाम ही रख दिया ‘प्रभुप्रसाद’। बड़ा होकर प्रभुप्रसाद बड़ा सन्त बना। उसके रचे भजन (अभंग) आज भी महाराष्ट्र में गाये जाते हैं।

व्यवहार जीवन में हम अनेक उदाहरण देखते हैं जब कठोर दण्ड, अनुशासन, शिक्षा आदि से भी जिनके जीवन में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आता, निर्मल स्नेह से वे परिवर्तित हो जाते हैं। सच्चे स्नेह से तो हिंसक पशु भी अपने बन जाते हैं। स्नेह में भगवान को भी बांध लेने की सामर्थ्य होती है। प्रेम के वशीभूत होकर ही राम ने शबरी के वन-फल खाए। कृष्ण ने अर्जुन का रथ हांका, द्रौपदी का चीर बढ़ाया।

ममता, वात्सल्य, प्रेम, लाड़, दुलार सब स्नेह के ही रूप हैं।

स्वाभिमान

सोरठा - भासे धूरि समान, पद सुख संपति इन्द्र सम।

जीवित मृतक हीमान, स्वाभिमान जिनमें नहीं॥

स्वयं के प्रति गौरव का बोध होना स्वाभिमान है। अपनी संस्कृति, अपनी परम्पराएं, अपना देश, अपनी भाषा अपने सिद्धांत, अपना आचार-विचार-पुरुषार्थ आदि ऐसी श्रेष्ठताएं जो हमें अपने पुरुषार्थ या पूर्वजों से प्राप्त हैं, उन पर गर्व करना, उनके अपमान को न सहना, स्वाभिमान है। स्वाभिमानी मनुष्य किसी भी मूल्य पर इनके त्याग का कोई समझौता नहीं करता। यहाँ तक कि मृत्यु का वरण कर भी स्वाभिमान रक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है।

● महाभारत के पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ की सफलता के लिए पाञ्चजन्य शंख, एक सोने की चौकीपर रख दिया गया, 'जब इसमें से अपने आप ध्वनि होने लगेगी तब यज्ञ पूर्ण सफल माना जाएगा।' राज्य के सभी लोग यज्ञ-प्रसाद पाने राजपरिवार द्वारा निमंत्रित थे। सबको महारानी द्रौपदी स्वयं भोजन करवा रही थी। सब भोजन कर चुके पर शंख नहीं बजा। खोज आरंभ हुई। नगर के बाहर एक अन्त्यत वृद्ध अपना भोजन बनाने की तैयारी में दिखा। अर्जुन ने पूछा कि आप हमारे यहाँ भोजन करने क्यों नहीं आए? उसने नम्रता से उत्तर दिया "वीरवर अर्जुन! मुझे आमंत्रण ही नहीं मिला। स्वाभिमान मेरा भी है। बिना निमंत्रण, चाहे राजा के यहाँ ही जाना हो, मैं भोजन के लिए नहीं जा सकता। आप चाहे तो मुझे प्राण दण्ड दे दें।"

अर्जुन को भूल समझ में आ गई। ससम्मान वृद्ध को अपने रथ पर लाए। स्वयं द्रौपदी ने अपनी रसोई में उसे परोसा, युधिष्ठिर हाथ धुलवाने को और श्रीकृष्ण झूठी पत्तल उठाने को तत्पर खड़े थे। शंख भी यज्ञ की सफलता का घोष कर रहा था।

● सन 1926 के बर्लिन ओलंपिक की घटना है। हॉकी का निर्णायक खेल भारत और जर्मनी के बीच खेला जा रहा था। मेजर ध्यानचन्द की हॉकी से मानो गंद चिपक सी गई थी। वे गोल पर गोल करते जा रहे थे। जर्मनी का तानाशाह हिटलर स्वयं खेल देख रहा था। वह हॉकी के इस जादूगर के खेल पर मुग्ध हो उठा। आठ गोल से भारत विजयी हुआ। खेल समाप्ति पर हिटलर ने ध्यानचंद को बुला कर पूछा "नौजवान, क्या करते हो उस भारत में?" उत्तर मिला "भारतीय सेना में सैनिक हूँ।" हिटलर बोला, "भारत छोड़ो, जर्मनी आ जाओ। तुम्हें मार्शल बना दूंगा।" स्वाभिमानी ध्यानचंद ने खेल मैदान की भांति ही यहां भी अचूक गोल किया। "नहीं श्रीमान्! आपके यहां मार्शल बनने से मुझे अपने देश भारत में सैनिक बने रहना प्रिय है।"

● स्वामी रामतीर्थ भारतीय दर्शन और संस्कृति का सन्देश देने अमेरिका गए तो वहाँ के निवासियों ने उन्हें अनेक भेंट-उपहार दिए। स्वामीजी ने उन्हें वहीं अभावग्रस्त लोगों में वितरित कर दिया। एक स्थान पर भेंटकर्ता ने उन्हें एक पोशाक कोट-पेंट-हैट भेंट कर उसे पहनकर दिखाने को कहा। स्वामीजी ने अतिथि धर्म पालन करते हुए शिष्टाचारवश कोट, पैट एवं जूते पहने और हैट की जगह अपना भगवा साफा लपेट लिया। लोगों ने इसका कारण पूछा। स्वामी जी स्वाभिमान से दीप्त मुस्कान बिखेरते हुए बोले "राम के सिर पर तो सदैव भारत ही रहेगा।"

● सरस्वती शिशु मंदिर में आचार्य एक दीदी बस में स्थान के अभाव में खड़ी-खड़ी यात्रा कर रही थी। सीट पर बैठे यात्री ने सहयात्री से पूछा “यह कौन है?” वह दीदी की सादगीपूर्ण वेशभूषा और स्वाभिमान दीप्त मुस्कान से प्रभावित जान पड़ता था। साथी ने कहा “यह सरस्वती शिशु मंदिर में आचार्य है।” “आचार्य क्या होता है? कौन बनते हैं आचार्य?” उसने फिर पूछा। साथी ने व्यंग्यपूर्वक कहा, “जो लोग कोई काम नहीं कर पाते वे शिक्षक बन जाते हैं। जो शिक्षक भी नहीं बन पाते वे सरस्वती शिशु मंदिर में आचार्य बन जाते हैं।”

दीदी से रहा न गया। बोली “भाई साहब! आप उल्टा कह रहे हैं। जो काम कोई नहीं कर पाता उसे करने वाले शिक्षक बनते हैं और जो काम शिक्षक भी नहीं कर पाते उसे करने वाले आचार्य बनते हैं।” कहना न होगा कि इस स्वाभिमान पूर्ण उत्तर को सुनकर दोनों यात्री निरुत्तर हो चुके थे।

● केशव उस समय बच्चे ही थे। शाला में इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया के जन्मदिन की मिठाई बंट रही थी। केशव ने मिठाई का दोना फेंक दिया। उसका कहना था, ‘हमारे देश को परतंत्र बनाने वाले शासकों के जन्मदिन की मिठाई हम क्यों खाएं?’ यही जन्मजात देशभक्त स्वाभिमान की बालक आगे चलकर विश्व के सबसे बड़े स्वयंसेवी संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संस्थापक बना।

स्वाभिमान, घमण्ड नहीं होता। स्वाभिमान का आधार सत्य होता है संस्थापक घमण्ड में दिखावा होता है जिसे प्रदर्शित करने हेतु असत्य का भी सहारा लिया जाता है। स्वाभिमान उसी वस्तु का होता है जिसकी सत्यता एवं श्रेष्ठता पर हमारी श्रद्धा अगाध होती है।

सद्ग्रन्थ

रामचरितमानस

श्रीरामचरितमानस गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचा गया ऐसा अमर भक्ति महाकाव्य है जो अनपढ़ निर्धन ग्रामवासी किसानों की झोपड़ियों, श्रमिकों की झुगियों से लेकर महाविद्वान महापुरुषों के आश्रमों एवं विश्वविद्यालयों के व्याख्याताओं की कक्षाओं तक में पढ़ा-सुना जाता है। इसकी रचना 1584 ई. में काशी में हुई मानी जाती है। अवधी भाषा में रचित इस ग्रन्थ में वाल्मीकि रामायण से मूल कथा ग्रहण कर अनेक ग्रन्थों, वेदों, पुराणों एवं लोक प्रचलित कथाओं का भी अनुशीलन कर गोस्वामी जी ने सात काण्डों में लिखा है। यह केवल रामकथा

नहीं है बल्कि इसके माध्यम से तुलसीदास जी ने सामाजिक सम्बन्धों की मर्यादाओं का भी सुन्दर आदर्श चित्रित किया है। भक्ति के साथ-साथ पारिवारिक सम्बन्धों के आदर्शों की सुन्दर प्रस्तुति के कारण यह घर-घर में परिचित महाकाव्य है। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से दोहा एवं चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है।

इस ग्रन्थ में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड, और उत्तरकाण्ड नामक सात काण्डों में धर्म-अधर्म, नीति, कर्तव्य, ज्ञान व भक्ति के अमूल्य सूत्र प्राप्त होते हैं।

नीचे दिया गया अंश इसके चौथे सोपान किष्किंधा काण्ड के 13 व 14 वें दोहों के बीच से उद्धृत पावन-प्रसंग है। वानर राज सुग्रीव की नगरी किष्किंधा में ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहे वनवासी राम, वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए अनुज लक्ष्मण को नीति बोध कराते हैं। इसमें प्रकृतिवर्णन व नीति कथन का सुन्दर समन्वय है —

**दोहा- लछिमन देखु मोर गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, विष्णु भगत कहूँ देखि॥**

हे लक्ष्मण! देखो बादलों को देखकर मोर ऐसे नाच रहे हैं जैसे विरक्त गृहस्थ को विष्णु भक्तों को देख प्रसन्नता होती है।

**चौपाई- घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमक रहि न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥**

अर्थ- बादल अपने घमण्ड में आकाश में भयंकर गरज रहे हैं यह देख कर मेरा मन बहुत डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ऐसे ही नहीं ठहर रही जैसे दुष्ट व्यक्ति का प्रेम स्थिर नहीं रहता अर्थात् थोड़ी देर दिखता है फिर अदृश्य हो जाता है।

**बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥**

अर्थ-बादल पृथ्वी के समीप आकर ऐसे बरस रहे हैं जैसे विद्वान व्यक्ति विद्या पाकर और विनम्र हो जाते हैं। पर्वत वर्षा की बूंदों का आघात ऐसे ही सहन कर रहे हैं जैसे संत (सज्जन) लोग दुष्टों के (कटु) वचनों को सहन करते रहते हैं अर्थात् उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते।

छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहुँ धन खल इतराई।
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी॥

अर्थ-छोटी-छोटी नदियाँ किनारे तोड़ कर ऐसे बह चली हैं जैसे थोड़ा-सा धन पा जाने पर भी दुष्ट इतराने लगता है। पृथ्वी पर गिरते ही पानी गंदला हो गया है जैसे शुद्ध जीव को माया अपने संसर्ग से अशुद्ध बना देती है।

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुण सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुं जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

अर्थ-पानी इकट्ठा हो-होकर तालाबों में ऐसे भर रहा है जैसे एक-एक कर सारे सदगुण सज्जन के पास चले आते हैं। नदियों का जल समुद्र में जाकर ऐसे स्थिर हो रहा है जैसे श्रीहरि को पाकर जीव आवागमन (जन्म-मृत्यु) से रहित हो मोक्ष पा जाता है।

दोहा-हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड बाद ते, गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ॥

अर्थ-पृथ्वी हरी-हरी घास की अधिकता से ढंककर ऐसी हो गई है कि रास्ते (पगडण्डियाँ) भी समझ में नहीं आते। जैसे पाखण्ड के प्रचार से श्रेष्ठ ग्रन्थ छुप जाते हैं।

इससे आगे भी इस प्रसंग में सत्रहवें दोहे तक प्रकृति वर्णन के माध्यम से ज्ञान व नीति की बातें की गई हैं। यहाँ केवल एक अंश दिया गया है। आपसे अपेक्षा है कि आप यह पूरा प्रसंग पढ़ें, समझें और जीवन में धारण करें।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता संसार के ज्ञान कोष का शिरोमणि ग्रन्थ है। 700 श्लोकों को अठारह अध्यायों में निबद्ध कर महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के अंश रूप इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में चरित्र निर्माण और कर्म प्रेरणा का अद्भुत सार प्रस्तुत किया है। गीता का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। विद्वानों ने इन श्लोकों में विविध विषयों के सूत्र खोजे हैं, उनकी व्याख्या की है। यहां इस महान् ग्रन्थ के सोलहवें अध्याय के आरंभिक चार श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा बताई गई 'दैवी' और 'आसुरी' सम्पदा की संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत है।

अभयं सत्त्व संशुद्धिर्ज्ञानं योग व्यवस्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

भावार्थ-भगवान् श्रीकृष्ण बोले- भय का सर्वथा अभाव (निडरता), अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता (मन, बुद्धि, चित और अहंकार का शुद्ध होना), तत्त्वज्ञान (परमसत्य), के लिए ध्यान योग में निरंतर दृढ़ स्थिति, सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर्म का आचरण (सबके मंगल की कामना से सर्वजन हिताय किया गया कर्म), वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन आदि स्वाध्याय, स्वधर्म पालन के लिये कष्ट सहना (तप), शरीर और इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता;

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्व लालुप्त्वं मार्दवंहीर चापलम्॥

भावार्थ-अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, कर्ता भाव का त्याग (मैंने यह किया ऐसा घमण्ड न होना), चित्त की स्थिरता, किसी की चुगली या निन्दा न करना, सभी प्राणियों पर बिना कारण (दिखावे, स्वार्थ या यश की इच्छा के बिना) दया, इन्द्रियों से विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का संगम होने पर भी उनमें आसक्त न होना, कोमल स्वभाव, लोक व शास्त्र विरुद्ध कार्य करने में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव;

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनाति मानिता।

भवन्ति सम्पदं दैवीमाभिजातस्य भारत॥

भावार्थ- हे अर्जुन! तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, किसी से भी शत्रुता का भाव न रखना, अपनी श्रेष्ठता का अभिमान न होना, ये सब (उपर्युक्त तीनों श्लोकों में वर्णित) दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न मनुष्य के लक्षण हैं।

(सामान्य भाषा में समझें तो ये सारे जीवन मूल्य मनुष्य को श्रेष्ठ नागरिक, उत्तम मानव बनाने के लिए आवश्यक गुण हैं।)

दम्भोदर्योऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।

अर्थ-हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये सब आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न मनुष्य के लक्षण हैं। (इनसे बचना चाहिए)

योग

परमानन्द की प्राप्ति के साधन स्वरूप जो व्यवस्था बनी है उसे योग कहते हैं। योग साधना द्वारा ही 'परम तत्त्व' की अनुभूति की जा सकती है। योगी-ऋषियों ने चार प्रकार के योगों का वर्णन किया है जिन्हें योग चतुष्टय कहा जाता है - (1) भक्ति योग (2) कर्म योग (3) राज योग और (4) ज्ञान योग।

(1) **भक्तियोग**- ईश्वर के प्रति समर्पण और एकान्तिक प्रेम को भक्ति कहा गया है। ईश्वर तथा आत्मा की एकात्म अनुभूति ही भक्ति है। आचार्य रामानुज का कथन है कि जिसे हम सदा स्मरण करते हैं उसी के भाव में रंग जाते हैं, तन्मय (तत्+मय) हो जाते हैं। भगवान को सर्वदा स्मरण करने वाला भगवन्मय हो जाता है। भगवन्मय भक्त इस पाञ्च-भौतिक (पाँच तत्त्वों अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु व आकाश से बने) शरीर के नष्ट हो जाने पर ईश्वर को प्राप्त करते हैं। यही मोक्ष है। भक्तिमार्ग के आदि प्रणेता देवर्षि नारद हैं। रामानंद, चैतन्य, सूर, तुलसी, नानक, मीराबाई, तुकाराम, रविदास, कबीर, दादू इत्यादि सन्तों ने देश में भक्ति का प्रचार किया। नारद भक्ति सूत्र, शाण्डिल्य सूत्र, श्रीमद्भागवत्, बोधायन आदि प्राचीन ग्रन्थों में भक्तिमार्ग का विवेचन है।

(2) **कर्मयोग**- भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि जीव कर्म किये बिना नहीं रह सकता किन्तु कर्म के फल की भावना ही बंधनकारी है। निष्काम कर्म की साधना ही कर्मयोग है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' गीता का उपदेश है। निष्काम कर्म की सिद्धि का उपाय सभी कर्मों को ईश्वरार्पण करने का मनोभाव है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मयोग के साथ-साथ भक्तियोग एवं ज्ञान योग की भी प्रेरणा दी है। आधुनिक कर्मयोगी स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानन्द, न्यायमूर्ति रानडे, लोकमान्य तिलक, डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार इत्यादि मनीषियों ने इस मार्ग का विशेष विवेचन किया।

(3) **राजयोग**- मोक्ष की सिद्धि हेतु अपने अन्दर के चैतन्य को जागृत कर अबाधरूप में उसके प्रकटीकरण हेतु की जाने वाली साधना का मार्ग राजयोग है। राजयोग के प्रेरक भगवान् शिव और इसके प्रवर्तक महर्षि पतञ्जलि माने जाते हैं। राजा जनक, महर्षि वेदव्यास, आदिपुरुष मनु, महर्षि दधीचि आदि पौराणिक महापुरुषों को राजयोग का तथा राजा भर्तृहरि, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ इत्यादि ऐतिहासिक ऋषियों को हठ योग का साधक माना जाता है। तात्त्विक दृष्टि से राजयोग सांख्यदर्शन का ही रूप है। इसके अनुसार (चेतन) पुरुष और (जड़) प्रकृति के संयोग से सृष्टि का निर्माण हुआ है। पुरुष जीव का चैतन्य असीम आनंदमय है। चित्त की चंचलता समाप्त कर उसे अपने स्वरूप में केन्द्रित कर देने से बाह्य चेष्टाएं समाप्त हो जाती हैं और जीवात्मा को परम शांति की प्राप्ति होती

है। इस स्थिति को समाधि कहा जाता है। पातंजल योग साधना के अष्टांग हैं — यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

(4) ज्ञानयोग- सत्य के सैद्धान्तिक विश्लेषण द्वारा तत्त्व साक्षात्कार करने को ज्ञान योग कहा गया है। मोक्ष प्राप्ति के ज्ञान योग मार्ग का साक्षात्कार कर प्रतिपादन करने वाले याज्ञवल्क्य, शुकदेव, वामदेव, वसिष्ठ आदि महर्षि थे। तात्त्विक दृष्टि से आत्मतत्त्व ही एकमात्र सत्य है जोकि सच्चिदानन्द स्वरूप है। माया से परे आत्मतत्त्व का बोध ही ज्ञान योग है। जगत से सर्वथा भिन्न और आत्मतत्त्व से सर्वथा अभिन्न परम तत्त्व का ज्ञान ही आत्मज्ञान है। उपनिषदों में आत्मज्ञान प्राप्ति के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन (निरंतर चिंतन) आदि मार्ग बताए गए हैं। शास्त्र का श्रवण, श्रवण पर मनन, मनन किये हुए पर ध्यान केन्द्रित कर तल्लीन हो जाना ही ज्ञान योग की चरम अवस्था है। इसे ही मोक्ष कहते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ जी की समाज दृष्टि

आचार्य महाप्रज्ञ जी आधुनिक युग के उन श्रेष्ठ महापुरुषों में अग्रिम पंक्ति के संतप्रवर हैं जिन्होंने समाज को सच्चा धार्मिक बनाने के लिए गहन, व्यापक और उदार चिंतन किया है। समाज को अधिक सदाचारी, मानवीय और समन्वययुक्त बनाने के लिए उनके विचारों के कुछ अमृत बिन्दु यहाँ प्रस्तुत हैं—

आचार्य महाप्रज्ञ जी का मानना है कि केवल अर्थ व्यवस्था को बदलने पर भी यदि व्यक्ति में परिवर्तन न हो तो समाज और रोगी हो जाता है। इस रुग्णता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि इसके चार तथ्य हैं —

(1) अहं की समस्या- अपना बड़प्पन दिखाने के लिए व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक साधन सुविधाओं को अधिकार में लेकर उससे वंचित शेष समाज के मन में हीनता और आक्रामक वृत्ति जगाता है।

(2) व्यक्तिवादी दृष्टिकोण- अपने और अपने लोगों के लिए वह शेष लोगों जिन्हें वह अपना नहीं मानता है, का अहित करता है।

(3) भोगवादी दृष्टिकोण- अधिकतम भोग की प्रवृत्ति ने अति तृष्णा को जन्म दिया है। अधिक उत्पादन, अधिक अर्जन व अधिक भोग इन तीन सूत्रों में बंधी जीवन शैली ने बहुसंख्य लोगों को सामान्य सुविधाओं से भी वंचित रखा है।

(4) अधिकार की मनोवृत्ति- संग्रह और ममता की मनोवृत्ति से मनुष्य अधिकार भाव से सबको अपने अधीन रखना चाहता है।

आचार्य जी इन चारों समस्याओं का उपाय बताते हैं— (1) अहं का परिष्कार (2) परस्परता का दृष्टिकोण (3) संयमित जीवन (4) नेश्रायवाद (न्यासीभाव या ट्रस्टीशिप)

कक्षा 11 में हमने समय की सूक्ष्म इकाइयों को जाना, यहां हम समय की महत्तम इकाइयों को जानेंगे।

युग -

युग चार हैं - कलियुग, द्वापर, त्रेता व सत्य युग। कलियुग का समय 432 सहस्राब्दी अर्थात् 4,32,000 वर्ष (चार लाख बत्तीस हजार वर्ष) है। दो कलियुग के बराबर एक द्वापर, अतः द्वापर हुआ - 8,64,000 वर्ष का। 3 कलियुग बराबर एक त्रेतायुग, अतः त्रेतायुग हुआ 12,96,000 वर्ष का और 4 कलियुग बराबर एक सत्ययुग। अतः सत्ययुग हुआ 17,28,000 वर्ष का।

चतुर्युगी -

चार युगों (कलि, द्वापर, त्रेता, सत्य) का कुल समय एक महायुग या चतुर्युगी कहलाता है। अतः 1 चतुर्युगी का समय हुआ - सत्ययुग के 17,28,000 + त्रेतायुग के 12,96,000 + द्वापर के 8,64,000 + कलियुग के 4,32,000 = 43,20,000 वर्ष। अर्थात् एक चतुर्युगी तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष की होती है।

मन्वन्तर -

चतुर्युगी से बड़ी इकाई है मन्वन्तर। 71 चतुर्युगी मिल कर 1 मन्वन्तर। मन्वन्तर शब्द का अर्थ है - मनु + अन्तर, अर्थात् एक मनु से दूसरे मनु के बीच के समय को मन्वन्तर कहते हैं। यह समय होता है - $43,20,000 \times 71 = 30,67,20,000$ (तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार) वर्ष। कुल 14 मनु होते हैं। इस समय 7वाँ मनु चल रहा है, जिसका नाम वैवस्वत है।

कल्प -

मन्वन्तर से भी बड़ी इकाई है, कल्प। 1000 महायुग (चतुर्युगी) के बराबर 1 कल्प होता है। अतः 1 कल्प का समय हुआ -

$43,20,000 \times 1000 = 4,32,00,00,000$ (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष। 1 कल्प अर्थात् ब्रह्मा (सृष्टि बनाने वाले) का 1 दिन, 2 कल्प बराबर ब्रह्मा का 1 दिन-रात। 2 कल्प को महाकल्प भी कहते हैं। इस महाकल्प का समय होता है - $4,32,00,00,000 \times 2 = 8,64,00,00,000$ वर्ष अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन-रात आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष का होता है। कल्प 30 होते हैं। वर्तमान समय तक इस सृष्टि के 25 कल्प बीत चुके हैं और छब्बीसवाँ 'श्वेतवाराह' कल्प चल रहा है।

ब्रह्मा की आधी आयु 'परार्ध' -

ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है तथा दिन-रात मिलाकर 2 कल्प या महाकल्प कहलाता है। ऐसे 360 महाकल्प मिलकर ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। ब्रह्मा का 1 वर्ष अर्थात् $8,64,00,00,000 \times 360 = 31,10,40,00,00,000$ (इक्कीस खरब दस अरब चालीस करोड़) वर्ष 1 ब्रह्मा की आयु 100 ब्रह्म वर्ष की होती है। ब्रह्मा की आयु के 1 से 50 वर्ष प्रथम परार्ध कहलाता है और 51 से 100 वर्ष तक द्वितीय परार्ध कहलाता है। इस समय ब्रह्मा का प्रथम परार्ध पूरा हो चुका है और द्वितीय परार्ध चल रहा है।

हमारी सृष्टि कब से चल रही है?

सृष्टि का सृजन ब्रह्मा करते हैं। ब्रह्मा का दिन शुरू होता है, तब सृष्टि का सृजन होता है। दिन पूरा होकर जब ब्रह्मा की रात्रि शुरू होती है, तब प्रलय होता है। वर्तमान में ब्रह्मा की आयु के 50 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं अर्थात् प्रथम परार्ध पूर्ण हुआ है और दूसरे परार्ध का छब्बीसवाँ दिन चल रहा है। इस दिन का नाम श्वेतवाराह कल्प है, ब्रह्मा के इस दिन में से अब तक 13 घटी, 42 पल, 3 विपल और 43 प्रतिविपल बीत चुके हैं।

प्रत्येक कल्प में 14 मन्वन्तर होते हैं, वर्तमान में 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं और 7वाँ मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर का नाम 'वैवस्वत' मन्वन्तर है। अर्थात् हमारी सृष्टि श्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर में चल रही है।

1 मन्वन्तर में 71 महायुग (चतुर्युगी) होते हैं। अब तक 71 में से 27 महायुग बीत चुके हैं और 28वाँ महायुग चल रहा है। अभी इस महायुग के तीन युग अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग बीत चुके हैं और कलियुग चल रहा है। इस कलियुग के पाँच हजार एक सौ बीस वर्ष बीत चुके हैं। इसे हम युगाब्द कहते हैं। अभी इस युगाब्द का 5121वाँ वर्ष चल रहा है। इन सबकी गणना करने पर हमें ज्ञात होता है कि यह सृष्टि 1,97,29,49,121वें वर्ष में चल रही है। अर्थात् सृष्टि की आयु एक अरब, सत्तानबे करोड़, उन्तीस लाख, उन्चास हजार एक सौ इक्कीस वर्ष है। आधुनिक विज्ञान ने भी सृष्टि की आयु लगभग 2 अरब वर्ष मानी है।

इतनी विशाल एवं सर्वशुद्ध काल गणना केवल भारत में ही है। जो वैज्ञानिक काल गणना के लगभग बराबर है।

भारतीय इतिहास दृष्टि

इस शीर्षक से एक बात स्पष्ट होती है कि आज की इतिहास दृष्टि भारतीय नहीं है, हमें इसे भारतीय बनाना है। वर्तमान इतिहास दृष्टि भारतीय क्यों नहीं मानी

जा सकती है? इसका उत्तर जानने के लिए हमें अंग्रेजी शासन काल के इतिहास को पढ़कर उनके छद्म उद्देश्यों को समझना होगा। अंग्रेजों का घोषित उद्देश्य भारत में व्यापार करना और उस माध्यम से भारत की सम्पदा को लूटना वास्तविक उद्देश्य था। इसके साथ-साथ धर्मान्तरण करना और अंग्रेजीकरण करना भी उनके परोक्ष उद्देश्य थे।

भारतीयों के मानस के अंग्रेजीकरण के लिए उन्होंने शिक्षा को अपने हाथ में लिया। मानस बदलने के लिए उन्होंने अनेक कार्य किये, जैसे —

- उन्होंने शिक्षा को राज्य के अधीन कर दिया। क्या पढ़ाना और क्या नहीं पढ़ाना शासन तय करने लगा। परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान के स्थान पर अंग्रेजी ज्ञान पढ़ाया जाने लगा।
- शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ न रखकर अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य कर दिया। परिणामस्वरूप संस्कृत सहित भारतीय भाषाओं का वर्चस्व समाप्त हो गया।
- भारतीय इतिहास की प्राचीनता को नकारते हुए नया भ्रामक इतिहास लिखवाया और पढ़ाया गया, जैसे आर्य भारत के बाहर से आए, वेद गडरियों के गीत हैं, सृष्टि की उत्पत्ति ईसा से 4004 वर्ष पूर्व हुई, वैदिक काल ईसा से 1500 वर्ष पूर्व था और भारत में कोई वैज्ञानिक विकास नहीं हुआ, आदि।

उन्होंने भारत के सांस्कृतिक इतिहास को बिल्कुल नकार दिया और केवल राजकीय इतिहास को ही मान्यता दी। परिणामस्वरूप भारतीयों की मानसिकता भी धीरे-धीरे राज्यकेन्द्रित बन गई। भारतीय विद्वान भी यही मानने लग गये कि राजाओं को केन्द्र में रखकर बीते हुए समय का वर्णन करना ही इतिहास है। अंग्रेजों से पहले तक हमारे देश में रामायण-महाभारत एवं पुराणों को इतिहास माना जाता था। परन्तु अंग्रेजों ने इन्हें काल्पनिक ग्रन्थ (माइथोलॉजी) बताकर इतिहास ग्रन्थों की श्रेणी से ही बाहर कर दिया। परिणामस्वरूप विद्वत क्षेत्र में आज भी ये धर्मग्रन्थ ही हैं, इतिहास ग्रन्थ नहीं।

इतिहास की भारतीय परिभाषा आज की पाश्चात्य परिभाषा से बिल्कुल भिन्न है और विशेष है। इस विशेषता को व्यक्त करने वाला श्लोक है —

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् उपदेशसमन्वितम्।

पुरावृत्तं कथारूपं इतिहासं प्रचक्षते॥

धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष, चारों पुरुषार्थों का उपदेश जिसमें मिलता है, जो पूर्व में हो चुका है तथा जिसे कथा के रूप में बताया गया है, वह इतिहास है। भारतीय परिभाषा में इतिहास पढ़ने का प्रयोजन स्पष्ट है कि इतिहास व्यक्ति को सही जीवन जीने का मार्ग दिखाने वाला होना चाहिए। अतः इतिहास में प्रेरक चरित्रों, प्रेरक संस्कृति ज्ञान परीक्षा —

कथाओं एवं घटनाओं का विशेष महत्त्व है। हमारे देश का इतिहास केवल राजाओं का इतिहास न होकर संस्कृति का इतिहास है।

सांस्कृतिक परम्परा का निरूपण करना इतिहास का मुख्य लक्ष्य है। इस दृष्टि से निम्नलिखित विषय अपेक्षित हैं —

- धर्म एवं देश रक्षार्थ किये गये कार्य एवं युद्ध, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किये गये अनुसंधान एवं सृजन, यज्ञादि, उत्सवादि।
- साहित्य, संगीत, कला, स्थापत्य आदि क्षेत्रों की उपलब्धियाँ तथा शास्त्रों एवं ज्ञान परम्परा के महत्त्वपूर्ण आयाम।
- भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण विश्व में संचार, विश्व का सांस्कृतिक इतिहास, विश्व के सांस्कृतिक मंच पर भारत का स्थान एवं मानवता की प्रगति में भारत की भूमिका।
- देश की सांस्कृतिक एकता बताने वाले सभी तत्त्व, उदाहरण के लिए कुम्भ मेला इत्यादि। भाषा की, जलवायु की, खान-पान की, वेशभूषा की, रंग-रूप की विविधता में सांस्कृतिक एकता की विशेषता।

उपर्युक्त सभी विषयों का समावेश करने वाला इतिहास ही सही अर्थ में सांस्कृतिक इतिहास होगा। हमारी इतिहास दृष्टि में यही मूलभूत दोष है कि हम भारतीय ज्ञानधारा को अभारतीय मापदण्डों पर तोलने का प्रयास करते हैं। हमें इससे उबरना होगा, तभी हमारे इतिहास ग्रन्थ शिक्षा की मुख्यधारा से जुड़ पायेंगे।

संकल्प

हिन्दू संस्कृति के अनुरूप प्रत्येक मांगलिक कार्य निश्चित पूजा विधि के साथ सम्पन्न होते हैं। पुरोहित (पंडित जी) यजमान से प्रारंभ में एक संकल्प करवाते हैं। इस संकल्प को पंडित जी पहले संस्कृत में बोलते हैं, जिसे यजमान दोहराते हैं। पूरा संकल्प अधोलिखित है —

ॐ तत्सत् अद्य ब्रह्मणोद्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वते मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे बौद्धावतारे एकवृन्दः सप्तनवतिकोटिः नवविंशति लक्षः नवचत्वारिंशत्सहस्रः विंशत्यधिक शततमे सृष्टिसंवत्सरे मासे पक्षे वासरे तिथौ काले शुभमुहूर्ते जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गते प्रान्ते जनपदे नगरे राष्ट्रशिक्षा सिद्धयर्थं अस्माभिः अत्र ज्ञान-यज्ञ क्रियते।

आपने इस संकल्प को पढ़ा, कुछ समझ में आया? यही स्थिति यज्ञ के यजमान की होती है। पंडित जी जैसे-तैसे इस संस्कृत के संकल्प को बुलवाते हैं और यजमान को जैसा सुनाई देता है, वैसा वह दोहराता है। इस प्रक्रिया में प्रायः न संस्कृति ज्ञान परीक्षा

तो पंडित जी समझकर बुलवाते हैं और न यजमान समझकर बोलता है। बिना समझे बोला गया संकल्प निरर्थक हो जाता है। जब संकल्प ही सार्थक नहीं होगा तो यज्ञ का फल कैसे मिलेगा? अतः हम संकल्प का अर्थ जानेंगे -

ॐ तत्सत्! - संकल्प के प्रारम्भ में 'ॐ तत्सत्' शब्द है। ओम् परमात्मा का नाम है। ऋषियों ने हमें ॐ अक्षर दिया। शंकराचार्य जी ॐ की व्याख्या करते हुए कहते हैं - 'ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानं नेदिष्टम्।' अर्थात् ॐ अक्षर परमात्मा का सबसे समीपवर्ती, प्रियतम नाम है। उसका उच्चारण किये जाने पर वह प्रसन्न होता है, जिस प्रकार लोग अपना प्रियनाम उच्चारण करने पर प्रसन्न होते हैं। वे आगे कहते हैं - 'नामत्वेन प्रतीकत्वेन च परमात्मोपासन साधनं श्रेष्ठमिति सर्ववेदान्तेष्ववगतम्'' अर्थात् नाम और प्रतीक रूप से वह परमात्मा की उपासना का उत्तम साधन है, ऐसा वेदान्त ग्रन्थों में विदित है।

ॐ नाम वाला वह परमात्मा कैसा है? परमात्मा 'तत्सत्' है। 'तत्' अर्थात् वह परमात्मा 'सत्' स्वरूप है। परमात्मा सत्य है और एक है - 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' सत्य एक है, विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। 'ॐ तत्सत्' का अर्थ है, हम उस सत्य स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं।

अब चर्चा प्रारंभ होती है, समय की अर्थात् आज जब हम संकल्प कर रहे हैं तब केवल किसी कैलेण्डर वर्ष के किसी महीने की कोई दिनाँक नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक का हमारा जो इतिहास है, उसका भी हम संकल्प में स्मरण करते हैं।

अद्य ब्रह्मणो द्वितीय परार्धे - सृष्टि के रचनाकार ब्रह्माजी हैं। ब्रह्मा का जब एक दिन शुरू होता है तब सृष्टि का सृजन होता है। दिन पूरा होकर जब रात्रि शुरू होती है, तब प्रलय होता है। ब्रह्मा का दिन-रात हमारे दिन-रात जितना छोटा नहीं होता। आपने कालगणना में युग, मन्वन्तर, कल्प आदि नाम पढ़े हैं और उनका मान भी जाना है। ब्रह्मा का एक दिन अर्थात् एक कल्प और एक कल्प होता है चौदह मन्वन्तर के बराबर। दो कल्पों को कहते हैं महाकल्प। महाकल्प का अर्थ है ब्रह्मा का एक दिन-रात। ब्रह्मा के तीस दिन बराबर एक माह और तीन सौ साठ दिन अर्थात् 360 महाकल्पों का ब्रह्मा का एक वर्ष, 50 वर्षों का एक परार्ध। ब्रह्मा की कुल आयु 2 परार्ध अर्थात् 100 वर्ष। वर्तमान में ब्रह्मा की आयु के 50 वर्ष पूर्ण होकर दूसरा परार्ध चल रहा है। अतः 'अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे' का अर्थ हुआ 'आज ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में'।

श्रीश्वेतवाराहकल्पे - ब्रह्मा की आयु का एक दिन अर्थात् कल्प। 2 कल्प का एक महाकल्प, कल्प कुल 30 हैं। इस सृष्टि की आयु के अब तक 25 कल्प बीत चुके हैं और 26वाँ कल्प चल रहा है। 26वें कल्प का नाम 'श्वेतवाराह' कल्प है। अतः श्रीश्वेतवाराह कल्पे का अर्थ है, 'सृष्टि के श्वेतवाराह कल्प में'।

वैवस्वते मन्वन्तरे - 14 मन्वन्तरों के बराबर एक कल्प होता है। मन्वन्तर 71 महायुग अथवा चतुर्युगी के बराबर होता है। ऐसे कुल 14 मन्वन्तर होते हैं। इस सृष्टि चक्र में अब तक 6 मन्वन्तर बीत चुके हैं और इस समय सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है, जिसका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है।

अष्टाविंशतितमे कलियुगे - इस समय 'कलियुग' है। चारों युगों को मिलाने पर एक महायुग होता है। जैसे सप्ताह के बार-बार आते हैं, महीने बार-बार आते हैं, वैसे ही युग भी बार-बार आते हैं। इस समय जो कलियुग चल रहा है, वह अट्ठाइसवाँ कलियुग है। यही अर्थ है 'अष्टाविंशतितमेकलियुगे' का, अर्थात् हम अट्ठाइसवें कलियुग में संकल्प कर रहे हैं।

कलिप्रथम चरणे - प्रत्येक कलियुग 4,32,000 (चार लाख बत्तीस हजार) वर्ष का होता है। प्रत्येक कलियुग के 1,08,000 (एक लाख आठ हजार) वर्ष के चार चरण होते हैं। इस अट्ठाइसवें कलियुग का यह पहला चरण चल रहा है। इस पहले चरण में अब तक 5,121 वर्ष पूर्ण होकर 5,122 वाँ वर्ष चल रहा है, जिसे युगाब्द कहते हैं। अतः 'कलिप्रथम चरणे' का अर्थ हुआ। इस सृष्टिचक्र के अट्ठाइसवें कलियुग के प्रथम चरण में संकल्प किया जा रहा है।

बौद्धावतारे - भगवान विष्णु बार-बार इस पृथ्वी पर अवतार अर्थात् मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं। भगवान का अवतार लेने का उद्देश्य है। वे स्वयं गीता में कहते हैं कि जब-जब पृथ्वी पर आतंक बढ़ जाता है, संस्कार समाप्त हो जाते हैं, दुष्टों का प्रभाव बढ़ने लगता है, धर्म की ग्लानि होने लगती है और सर्वत्र अधर्म का बोलबाला होने लगता है, तब-तब मैं धर्म की संस्थापना करने के लिए, दुष्टों का संहार करते हुए सज्जनों की रक्षा करने के लिए इस धरा पर आता हूँ। अभी तक भगवान नौ बार अवतार ले चुके हैं -

1. मत्स्य अवतार, 2. कूर्म अवतार, 3. वराह अवतार, 4. नरसिंह अवतार, 5. वामन अवतार, 6. परशुराम अवतार, 7. रामावतार, 8. कृष्णावतार, 9. बुद्धावतार।

दसवाँ अवतार कल्कि अवतार होगा। वर्तमान में बौद्धावतार अंतिम अवतार है।

एकवृन्दः सप्तनवतिकोटिः नवविंशति लक्षः नवचत्वारिंशत्सहस्रः विंशत्यधिक शततमे सृष्टिसंवत्सरे - हमारी सृष्टि की आयु- एक वृन्दः (एक अरब) सप्तनवतिकोटिः (97 करोड़), नवविंशतिलक्षः (29 लाख), नवचत्वारिंशत्सहस्र (49 हजार), विंशत्यधिक शतत में (121 वर्ष) है। अर्थात् इस समय हम सृष्टि संवत् के 1,97,29,49,121वें वर्ष में संकल्प कर रहे हैं।

मासे, पक्षे, वासरे, तिथौ, काले, शुभमुहूर्ते - इसमें वर्तमान समय का उल्लेख किया जाता है, जैसे - आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि सोमवार को प्रातःकाल शुभ मुहूर्त में हम अमुक यज्ञ कर रहे हैं।

समय का पुण्य स्मरण करने से ध्यान में आया होगा कि हमारी संस्कृति कितनी प्राचीन है। हमारे पुरखों ने समय की गणना की श्रेष्ठ परम्परा विकसित की, जो आज तक अक्षुण्ण चल रही है।

इस संकल्प में अब तक हमने जाना कि हम किस कालखण्ड में जी रहे हैं। अब हम जानेंगे कि इस विशाल पृथ्वी पर भौगोलिक दृष्टि से हम कहाँ रह रहे हैं।

जम्बुद्वीपे - 'जम्बु द्वीपे' का अर्थ है, 'जम्बुद्वीप में' यह जम्बुद्वीप क्या है और कहाँ है? पृथ्वी पर सात द्वीप हैं। हम प्रातःस्मरण में नित्य बोलते हैं, 'सप्तर्षियोद्वीपवनानि सप्तः' अर्थात् ऋषि भी सात हैं, द्वीप भी सात हैं और वन भी सात हैं। इन सात द्वीपों के नाम हैं - 1. जम्बुद्वीप, 2. प्लक्षद्वीप, 3. शाल्मलिद्वीप, 4. कुशद्वीप, 5. क्रौंच द्वीप, 6. शाकद्वीप, 7. पुष्करद्वीप।

जम्बुद्वीप का क्षेत्र 1 लाख योजन है अर्थात् 41 लाख 44 हजार वर्ग किलोमीटर। इसकी आकृति कमल की पंखुड़ी जैसी है। जम्बुद्वीप में हम रह रहे हैं।

भरतखण्डे - जम्बुद्वीप के अन्तर्गत नौखण्डों के नाम थे - 1. इलावृत, 2. रम्यक, 3. हिरण्य 4. कुरु, 5. हरिदेश, 6. किंपुरुष, 7. भारत, 8. भद्राश्व, 9. केतुमाल

इन सभी खण्डों का क्षेत्रफल नौ हजार योजन अर्थात् 3,72,960 वर्ग किलोमीटर था। इन नौ खण्डों के मध्य में इलावृत खण्ड है। इलावृत के उत्तर में रम्यक, हिरण्य एवं कुरु नामक तीन खण्ड हैं। इलावृत के दक्षिण में, हरिदेश, किंपुरुष व भारत, ये तीन खण्ड हैं। इलावृत के पूर्व में भद्राश्व तथा पश्चिम में केतुमाल खण्ड हैं।

ये नौ खण्ड पर्वतों के कारण एक दूसरे से अलग-अलग होते हैं। इलावृत के उत्तर में नील, श्वेत तथा शृंगवान नामक पर्वत हैं। दक्षिण में निषध, हेमकुट एवं हिमालय पर्वत हैं। पूर्व में गंधमादन और पश्चिम में माल्यवान नामक पर्वत स्थित हैं।

खण्ड को वर्ष भी कहते थे, जैसे - भारतवर्ष अथवा भरतखण्ड। आज वर्ष

या खण्ड को ही देश कहते हैं। भरतखण्ड या भारतवर्ष ही आज का भारत देश है। और जम्बुद्वीप ही आज का एशिया महाद्वीप होगा, ऐसा अनुमान से कह सकते हैं।

आर्यावर्तान्तर्गते - इस विशाल भरतखण्ड के किस स्थान पर हम रहते हैं? यह पता सरलता से लग जाये, इसलिए इसके भौगोलिक विभाग किये गये। एक खण्ड में इन विभागों को आवर्त अथवा पथ कहा जाता था। उदाहरणार्थ आर्यावर्त, कुशावर्त, ब्रह्मावर्त अथवा दक्षिणापथ आदि। सामान्यतः आर्यावर्त अर्थात् उत्तरी भारत, ब्रह्मावर्त अर्थात् पूर्वी भारत, कुशावर्त यानि पश्चिमी भारत तथा दक्षिणावर्त अथवा दक्षिणापथ अर्थात् दक्षिण भारत। आज की शब्दावली में इन्हें ZONE कहते हैं।

आवर्त भी बड़ा भूभाग होने से इनके भी विभाग थे, उन्हें क्षेत्र कहा जाता था। क्षेत्रों के नामकरण प्रसिद्ध तीर्थ अथवा विशिष्ट व्यक्ति के नाम पर हुए थे। पूरा देश अनेक क्षेत्रों में बँटा हुआ था। प्रमुख सात क्षेत्रों के नाम थे -

1. कुरुक्षेत्र, 2. हरिहरक्षेत्र, 3. प्रभास क्षेत्र, 4. रेणुकाक्षेत्र, 5. भृगुक्षेत्र, 6. पुरुषोत्तम क्षेत्र, 7. सूकरक्षेत्र। प्रमुख क्षेत्रों के अनेक उपक्षेत्र भी थे।

यह सम्पूर्ण भौगोलिक वर्णन प्राचीन पद्धति से हुआ है जिसका आधार सांस्कृतिक था। आज ये नाम प्रचलित नहीं हैं, क्योंकि आज का आधार राजनैतिक भूगोल है।

राष्ट्रशिक्षा सिद्धयर्थम् - संकल्प के अन्त में जिस प्रयोजन से यज्ञ अथवा मांगलिक कार्य करने जा रहे हैं, उसका उल्लेख करते हैं। जैसे, विद्यालय में राष्ट्रीय शिक्षा की सिद्धि के प्रयोजन से हम यज्ञ कर रहे हैं।

अब तक हमने संकल्प में उच्चारित सभी संस्कृत शब्दों का अर्थ जान लिया है, इसलिए इस संकल्प को हम हिन्दी में भी बोल सकते हैं। उदाहरण के लिए संकल्प की हिन्दी शब्दावली अधोलिखित होगी -

ॐ तत्सत्। आज ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में श्रीश्वेतवाराह कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें कलियुग के प्रथम चरण में सृष्टिसंवत् के एक अरब, सतानवे करोड़, उन्तीस लाख, उन्चास हजार एक सौ इक्कीसवें वर्ष के आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि सोमवार को प्रातःकाल के शुभ मुहूर्त में एशिया खण्ड के भारत देश के हरियाणा प्रान्त के कुरुक्षेत्र जिले के कुरुक्षेत्र नगर के विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान कार्यालय संस्कृति भवन में राष्ट्रीय शिक्षा की सिद्धि हेतु हम ज्ञानयज्ञ कर रहे हैं।

इस संकल्प को दोहराते ही संकल्प का अर्थ एवं महत्त्व दोनों ही समझ में आ जाते हैं। यह संकल्प बोलने से हम प्रतिदिन परमात्मा के साथ जुड़ते हैं, सृष्टि

के साथ जुड़ते हैं, सम्पूर्ण विश्व के साथ जुड़ते हैं तथा अपने पूर्वजों एवं देश के धर्म व संस्कृति के साथ भी जुड़ते हैं।

इससे हमें अपने पूर्वजों पर, अपनी कालगणना पर, भारत की चिरंजीविता पर और सबका कल्याण चाहने वाले उदात्त जीवन दर्शन पर गर्व होता है।

हमारे पूर्वजों ने बड़े यत्न से यह श्रेष्ठ 'संकल्प' हम तक पहुँचाया है। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम इसे कंठस्थ करें। जहाँ भी शुभ-मांगलिक कार्य हो वहाँ इसे स्वयं बोलें एवं बुलवायें और अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करें। तभी हमारी यह ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण बनी रहेगी।

1. यवनारि राजा खारवेल

सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् दस वर्षों के भीतर ही कलिंग और आन्ध्र के राजाओं ने मगध के मौर्य सम्राट का आधिपत्य अस्वीकार कर स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिये। ये दोनों राजा प्रतापी, धर्माभिमानी और राष्ट्राभिमानी थे।

उस समय यवनों ने सम्पूर्ण उत्तर भारत पदाक्रान्त कर लिया। मगध के दुर्बल राजा ने यवनों का कोई प्रतिकार नहीं किया। इस बात का प्रजा में प्रचण्ड क्षोभ था। कलिंग के पराक्रमी राजा खारवेल ने डेमेट्रियस की ग्रीक सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

राजा खारवेल ने प्रबल सेना के साथ मगध पर आक्रमण किया और उसके बाद अयोध्या के पास डेमेट्रियस की यवन सेना का विध्वंस कर उसकी ऐसी दुर्दशा की कि डेमेट्रियस तत्काल पीछे हटता हुआ, अपनी बची-खुची सेना के साथ पंचनद के उस पार चला गया। यवनों को इस प्रकार भारत की पर्वतीय सीमा तक खदेड़ने के बाद उसे कुछ राजकीय कारणों से तत्काल कलिंग लौटना पड़ा।

पराक्रमी खारवेल ने यवन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में वैदिक राजाओं की परम्परानुसार 'राजसूय' महायज्ञ किया। यह यज्ञ इसलिए महत्त्वपूर्ण था कि अशोक द्वारा यज्ञादि कर्मकाण्डों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। जिसके कारण लगभग 50 वर्षों तक कोई भी वैदिक यज्ञ-समारोह नहीं हो सके थे। राष्ट्रीय शत्रु यवनों को पराजित कर राजसूय यज्ञ का विशाल समारोह 50 वर्षों के बाद करना वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसीलिए भारतीय इतिहास में खारवेल का नाम राष्ट्राभिमानी राजाओं में अग्रणी है।

2. हूणांतक राजा यशोधर्मा

छठी शताब्दी के प्रारम्भ में मगध के सिंहासन पर एक अयोग्य राजा परगुप्त आसीन था। उसकी अयोग्यता के कारण अन्य राजे-महाराजे उसका आधिपत्य

अस्वीकार कर स्वतन्त्र राज्य चलाने लगे। भारतीय राज्यों में सर्वत्र हूणों का आतंक छाया हुआ था। उज्जयिनी में, जहाँ विक्रमादित्य का सिंहासन था, भी हूण राजा मिहिरगुल आरूढ़ था। अकेले उस पर आक्रमण करने का साहस किसी में नहीं था।

ऐसी विकट परिस्थिति में हूणों की सत्ता का निर्मूलन करने की प्रतिज्ञा करने वाला एक पराक्रमी वीर यशोधर्मा आगे आया। वह मालव प्रदेश का एक छोटा सा राजा था परन्तु उसका साहस और राष्ट्राभिमान हूणों के 'राजाधिराज मिहिरगुल' को सिंहासन से उतार कर हूणों का अंत करने वाला था।

यशोधर्मा ने सर्वप्रथम आस-पास के स्वतन्त्र भारतीय राज्यों को संगठित किया। संगठित शक्ति के बल पर संयुक्त युद्ध योजना बनाई। उन राजाओं ने यशोधर्मा के नेतृत्व में हूणों के विरुद्ध चारों ओर से एक साथ आक्रमण किया। सेनापति यशोधर्मा ने मिहिरगुल पर आक्रमण किया। यह भयंकर युद्ध ईस्वी सन् 528 में मन्दसौर में हुआ था। जिसमें यशोधर्मा ने मिहिरगुल को जीवित बन्दी बना लिया था।

हूण राजा मिहिरगुल के पराभव के पश्चात् यशोधर्मा ने पंचनद प्रदेश से हूणों का मूलोच्छेद कर दिया। पंचनद को स्वतन्त्र कर और भारतीय राजसत्ता का स्थायी प्रबन्ध कर यशोधर्मा अपनी विजयी सेना के साथ मालवा लौटा। अब वे 'महाराजाधिराज' बन गये थे। इस विजय की स्मृति में उन्होंने दो कीर्ति-स्तम्भों का निर्माण भी करवाया।

ईस्वी सन् 540 में मिहिरगुल की मृत्यु के पश्चात् सिन्धु के उस पार जो थोड़े से हूण बचे थे, वे भी धीरे-धीरे समाप्त हो गये। इस महत्वपूर्ण विजय के सम्बन्ध में डॉ॰ जायसवाल लिखते हैं, "हिन्दुराष्ट्र के साथ लगभग सौ वर्षों तक चलने वाले इस महासंग्राम में हूणों का जो प्रचण्ड संहार हुआ, उसके परिणामस्वरूप उनका संख्या बल बहुत घट गया। जो थोड़े से हूण बचे थे उन्होंने भारतीयता स्वीकार कर ली और एक-दो पीढ़ी में ही भारतीय समाज में इतने समरस हो गये कि उनमें हूणत्व का कोई चिह्न ही शेष नहीं रहा।"

हूणों पर यशोधर्मा द्वारा प्राप्त की गई इस निर्णायक विजय के दूरगामी परिणामों को बताते हुए विंसेंट स्मिथ लिखते हैं – "राजा यशोधर्मा के द्वारा मिहिरगुल का पराभव करने के बाद वक्षु नदी के पार भी हूणों की राजसत्ता का अन्त हो गया। उसके बाद लगभग 500 वर्षों अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी तक पारियात्र पर्वत (हिन्दुकुश पर्वत) से गांधार, कश्मीर, पंजाब व सिन्धु से लेकर कन्याकुमारी तक अखण्ड भारत में सर्वत्र वैदिक हिन्दुओं के स्वतन्त्र राज्य रहे।"

धन्य है, भारत माँ के यशोधर्मा समान सपूत।

विज्ञान के विकास में प्राचीन काल से ही भारतीयों का योगदान रहा है। उनके महत्त्व को स्वीकार नहीं कर यही प्रचारित किया जाता रहा है कि विज्ञान पाश्चात्य देशों की देन है। शिक्षित भारतीयों में भी यह एक प्रचलित धारणा है कि वेद, उपनिषद् व दर्शन आदि भारतीय ग्रन्थों में वर्णित हमारी परम्परागत धरोहर मुख्यतः धर्म से सम्बन्धित है तथा इन ग्रन्थों में विज्ञान का उल्लेख नगण्य है।

इस धारणा के प्रचलित होने का कारण है कि विज्ञान से सम्बन्धित संदर्भ ऐसे ग्रन्थों में फँले हुए हैं जिनका मुख्य विषय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी नहीं है। इन ग्रन्थों की भाषा संस्कृत, पाली या अन्य शास्त्रीय भाषा आज प्रचलित नहीं होने से इन भाषाओं के विशेषज्ञ ही इसे समझ सकते हैं, जो वैज्ञानिक नहीं हैं।

विज्ञान साधना का श्रीगणेश भारत में वैदिक काल से ही हो गया था। वेदों में गणित, ज्योतिष एवं आयुर्वेद के प्रामाणिक तथ्य हैं। प्राचीन भारत में विज्ञान की विविध विधाओं की प्रगति हुई! जिसमें गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, जन्तु-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, सूर्य विज्ञान, शिल्प, यंत्र शिल्प, विमान और वैमानिकी में पर्याप्त तथ्य उपलब्ध हैं।

भारतीय गणित

अंकगणित को समस्त विज्ञान का सिरमौर कहा जाता है। 3000 वर्ष पहले से भारतीयों का यही मत था। वेदांग ज्योतिष 4 में लिखा है —

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितिम्॥

जिस प्रकार मयूर की शिखायें तथा सर्प की मणियाँ सर्वोपरि शीर्ष स्थान पर स्थित होती हैं उसी प्रकार वेदांग शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोपरि है।

विश्व को सबसे बड़ी देन —

प्राचीन वैदिक काल के भारतीयों की विश्व को सबसे बड़ी देन गणित और संख्याओं का आविष्कार है। विज्ञान की जो प्रगति आज हो रही है उसकी कल्पना भी 'शून्य' के बिना असम्भव है। किसी भी संख्या को शून्य सहित दस अंकों में व्यक्त करना और प्रत्येक अंक को एक निरपेक्ष मान और एक स्थानीयमान देना, गणित और विश्व सभ्यता को भारत का बड़ा योगदान है।

संख्या प्रणाली को अरबवासियों ने भारत से सीखा। 712 ई० में जब अरबों ने भारत के सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया तो वे अपने साथ यहाँ प्रचलित अंकों की जानकारी भी ले गये और उसे अपना लिया। उन्होंने इसे इल्म- उल-हिन्दसा (हिन्द की विद्या) नाम दिया। अरबों से इसे पाश्चात्य देशों ने सीखा।

पाश्चात्य देशों में प्रचलित गिनती लिखने की रीति बहुत जटिल थी। भारतीय अंक प्रणाली सहज और सरल थी। प्रसिद्ध अरबी गणितज्ञ अल-ख्वारिज्मी ने ईसा की आठवीं सदी में अरबी भाषा में पहला अंकगणित सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक के गणित भाग को 'इल्म हिन्द' का नाम दिया गया। कई सौ वर्षों बाद इस अरबी ग्रन्थ का लैटिन भाषा में अनुवाद हुआ। यह अनूदित ग्रन्थ बहुत वर्षों तक यूरोप के विश्वविद्यालयों के पाठ्यग्रन्थ के रूप में प्रचलित रहा। फ्रांस के महान गणितज्ञ पीयरे लाप्लास ने लिखा है — 'भारत ने ही हमें प्रत्येक संख्या को दस अंकों द्वारा व्यक्त करने की उत्तम प्रणाली दी है। इसकी महत्ता इस बात से भी सिद्ध होती है कि आर्किमिडीज तथा अपोलोनियम जैसे बुद्धिमान गणितज्ञ भी इस पद्धति को नहीं खोज पाये।'।

उस युग के भारतीयों को न केवल संख्याओं और उनकी गणना की जानकारी थी, वरन वे ईसा से हजार वर्ष से भी अधिक पूर्व वेदाङ्ग ज्योतिष में अंकगणित की आधारभूत प्रणालियों से भी भलीभाँति परिचित थे। उन्हें वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल का भी ज्ञान था। नारद पुराण में इसकी विस्तार से चर्चा है। उन्हें भिन्नों और उनके जोड़, घटाना, गुणा, भाग की रीतियों का समुचित ज्ञान था। यथा—

“अर्धप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते।” (का०शु०सू०) अर्थात् $\left(\frac{1}{2}\right)^2 = \frac{1}{4}$

इसी प्रकार — “अध्यर्धपुरुषारज्जुर्द्वौसपादौकरोति” (का०शु०सू०) अर्थात् $\left(1 + \frac{1}{2}\right)^2 = 2\frac{1}{4}$

पाद अर्थात् चतुर्थ अंश, चौथाई या पाव। भिन्नों को व्यक्त करने के लिए भाग का प्रयोग किया जाता था यथा पञ्चम भाग $\frac{1}{5}$, सप्तम भाग $\frac{1}{7}$, दशम भाग $\frac{1}{10}$ ।

बीजगणित तथा रेखागणित का विकास —

वैदिक ऋषियों द्वारा स्थापित व्यवस्था समस्त मानव ज्ञान-विज्ञान की जननी है। यज्ञों को उचित समय पर करने के लिये ज्योतिष और गणित का विकास हुआ।

विभिन्न प्रकार के यज्ञों के लिए रेखागणित के नियम बने। यज्ञवेदियों के लिये विविध ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई की ईंटें काम में लाई जाती थीं। इनकी सही नाप, जोड़ तथा इनकी वेदियों की अनुकूलता के लिये काम में लाये जाने वाले चिह्नों के प्रयोग ने आगे चलकर बीजगणित का रूप ग्रहण किया।

रेखागणित का सही-सही ज्ञान कराने के लिए ईसा से 800 वर्ष पूर्व 'कल्प' नामक वेदाङ्ग में 'शुल्व सूत्रों' की रचना की गई। शुल्व सूत्रों में यज्ञ हेतु विविध वेदियों के निर्माण हेतु आवश्यक स्थापत्यमान दिये हैं। वेदी के मापन में प्रयुक्त रस्सी को 'शुल्व' कहा जाता है। सूत्र का अर्थ है जानकारी को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना।

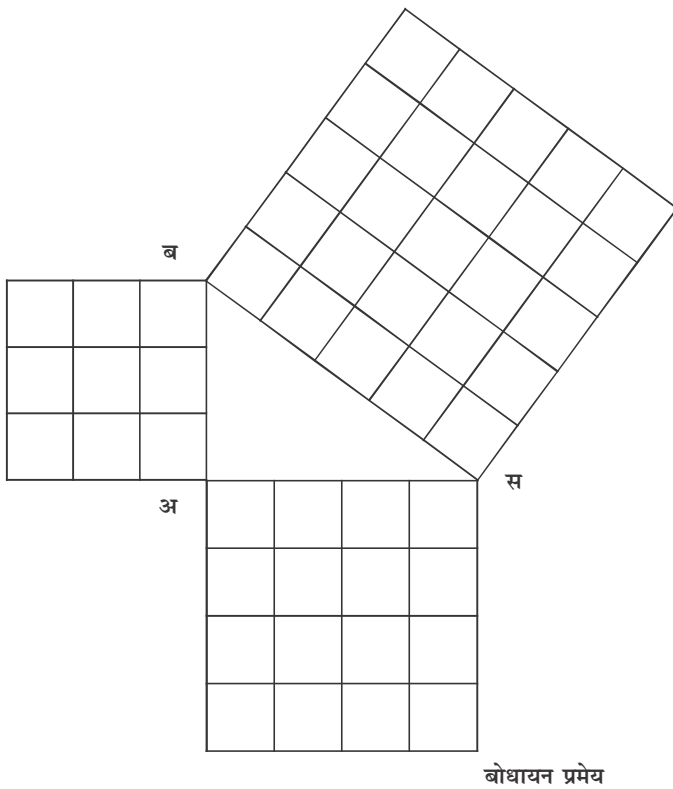
शुल्व सूत्र रचयिता - बोधायन प्राचीनतम सूत्रकार माने जाते हैं। बोधायन के शुल्व सूत्र में तीन अध्याय हैं। आज पाइथागोरस के नाम से सिखाई जाने वाली प्रमेय- 'समकोण त्रिभुज के कर्ण पर निर्मित वर्ग का क्षेत्रफल दो भुजाओं पर निर्मित वर्गों के क्षेत्रफल के योग के समान होता है।' - बोधायन ने पाइथागोरस से बारह-चौदह सौ वर्ष पूर्व सिद्ध कर दी थी। कई अन्य भारतीयों ने भी इस थ्योरम (प्रमेय) को पाइथागोरस से पहले अलग-अलग प्रकार से सिद्ध किया था। शतपथ ब्राह्मण में भी इस प्रमेय के विषय में नियम दिया हुआ है। खेद है कि हमारी पाठ्यपुस्तकों में इस संदर्भ में बोधायन का नाम तक नहीं लिया जाता।

बोधायन के शुल्व सूत्र में दी गई प्रमेय है -

दीर्घचतुरस स्याक्षण्या रज्जूः पार्श्वमानी तिर्यक्मानी
यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति।

अर्थात् किसी आयत का कर्ण क्षेत्रफल उतना ही होता है, जितना उसकी लम्बाई और चौड़ाई का होता है। सरलता से समझ में आता है कि यदि किसी आयत का कर्ण b स लम्बाई a तथा चौड़ाई s हैं तो बोधायन का प्रमेय $b^2 = a^2 + s^2$ होता है।

बोधायन ने उक्त प्रसिद्ध प्रमेय के अतिरिक्त कुछ और प्रमेय भी दिये हैं - किसी आयत का कर्ण आयत का समद्विभाजन करता है, आयत के दो कर्ण एक दूसरे का समद्विभाजन करते हैं। समचतुर्भुज के कर्ण एक दूसरे को समकोण पर विभाजित करते हैं आदि। बोधायन और आपस्तम्ब दोनों ने ही किसी वर्ग के कर्ण और उसकी भुजा का अनुपात बताया जो एकदम सही हैं।



बोधायन प्रमेय

शुल्ब सूत्र में किसी त्रिकोण के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल का वर्ग बनाना, वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर का वृत्त बनाना, वर्ग के दो गुने, तीन गुने या एक तिहाई क्षेत्रफल के समान क्षेत्रफल का वृत्त बनाना आदि विधियाँ बताई गई हैं।

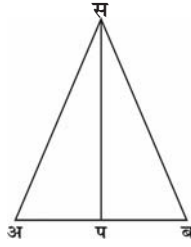
भास्कराचार्य की 'लीलावती' में बताया गया है कि किसी वृत्त में बने समचतुर्भुज, पंचभुज, षड्भुज, अष्टभुज आदि की एक भुजा उस वृत्त के व्यास के एक निश्चित अनुपात में होती हैं।

आर्यभट्ट ने त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने का भी सूत्र दिया है। यह सूत्र इस प्रकार है —

त्रिभुजस्य फलशरीरं समदल कोटी भुजार्धासंवर्गः।

त्रिभुज का क्षेत्रफल उसके लम्ब तथा लम्ब के आधार वाली भुजा के आधे के गुणनफल के बराबर होता है ।

उदाहरण —



$$\text{अ ब स} = \frac{1}{2} \text{अ ब} \times \text{स प}$$

प्राचीन काल में यज्ञ-वेदियाँ ज्यामिती के सिद्धान्तों पर बनती थीं। मन्दिरों व अन्य भवनों का निर्माण भी इन्हीं पर आधारित होता था।

पाई (π) का भारतीय इतिहास- आर्यभट्ट पहले गणितज्ञ थे जिन्होंने 476 ईस्वी में पाई (π) का परिमित मान निकाला था।

**चतुरधिकम् शतमष्टगुणम् द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्
अयुतद्वय निष्कम्भस्य आसन्नो वृत्तपरिणाहः॥ (आर्य भट्टीय-10)**

सौ में चार जोड़कर, उसे 8 से गुणा करें और उसमें 62000 जोड़ें। यह योगफल 20000 व्यास के वृत्त की परिधि का लगभग माप होगा अर्थात् 20000 व्यास के वृत्त की परिधि 62832 होगी। इस प्रकार उनके अनुसार $\pi = 3.1416$ जो 4 दशमलव स्थानों तक सही है।

त्रिकोणमिति - त्रिकोणमिति की संकल्पनाओं, सूत्रों तथा सारणियों का वर्णन 'सूर्य सिद्धान्त' (400 ईस्वी) वराहमिहिर के 'पञ्च सिद्धान्त' (400 ईस्वी) तथा ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' (630 ईस्वी) में मिलता है।

वैदिक गणित - गोवर्धन पीठ पुरी के शंकराचार्य पूज्य स्वामी भारती कृष्णतीर्थ जी ने एक गणितीय पद्धति प्रस्तुत की जिसका आधार वेद हैं। उन्होंने 16 मुख्य सूत्र तथा 13 उपसूत्र दिये जिनका अभ्यास करने पर अंकगणित, बीजगणित, रेखा गणित, गोलीय त्रिकोणमिति, घन, ज्यामिति, समाकल, अवकल-कलन इत्यादि के प्रश्न चुटकी में हल किये जा सकते हैं। वैदिक गणित सरल तथा आनन्द देने वाला गणित है।

अठारह विद्याएँ एवं चौंसठ कलाएँ

- **अठारह विद्याएँ** - विष्णु पुराण छठे अध्याय में कहा गया है -
अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय विस्तरः।

पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दशः॥28॥

चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र, ये चौदह विद्याएँ हैं।

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः।

अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टाशैव ताः॥29॥

आयुर्वेद, धनुर्वेद और गन्धर्व शास्त्र तथा चौथे अर्थशास्त्र को मिला लेने से कुल अठारह विद्या हो जाती हैं।

चौसठ कलाएँ –

प्राचीन काल में भारतीय शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापक था। शिक्षा में कलाओं की शिक्षा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। कलाओं के सम्बन्ध में रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य आदि ग्रन्थों में जानने योग्य सामग्री भरी पड़ी है, किन्तु इनका थोड़े में सुन्दर ढंग से विवरण शुक्राचार्य के 'नीतिसार' नामक ग्रन्थ के चौथे अध्याय के तीसरे प्रकरण में मिलता है जिसमें 64 कलाएँ मुख्य हैं।

चौसठ कलाओं का श्रीमद्भागवत् में दशम् स्कन्ध में 45 वें अध्याय के 36वें श्लोक में वर्णित है –

अहोरात्रैश्चतुःषष्टया संयत्तौ तावतीः कलाः।

गुरुदक्षिणायाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप॥ 36॥

केवल चौसठ दिन-रात में ही संयमी शिरोमणि कृष्ण और बलराम दोनों भाइयों ने सभी चौसठ कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

'कला' का लक्षण बतलाते हुए शुक्राचार्य लिखते हैं कि जिसको एक मूक (गूंगा) व्यक्ति भी (जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता), कर सके, वह कला है।

'शक्तो मूकोऽपि यत् कर्तुं कलासंज्ञं तु तत् स्मृतम्।

शुक्राचार्य का कहना है कि कलाओं के भिन्न-भिन्न नाम नहीं, अपितु केवल उनके लक्षण ही कहे जा सकते हैं, शुक्राचार्य के ग्रन्थ में 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है –

- (1) नृत्यकला,
- (2) वाद्यों का निर्माण और उनके बजाने का ज्ञान,
- (3) स्त्री और पुरुषों को वस्त्र एवं अलंकार को सुरुचिपूर्ण रूप से पहनाना 'कला' है।
- (4) अनेक प्रकार के रूपों का आविर्भाव करने का ज्ञान इसी कला का उपयोग

हनुमानजी ने श्री रामचन्द्र जी के साथ पहली बार मिलते समय ब्राह्मण वेश धारण करने में किया था।

(5) शय्या और आस्तरण (बिछौना) सुन्दर नीति से बिछाना और पुष्पों को अनेक प्रकार से गूँथना।

(6) द्यूत क्रीड़ा या अक्ष क्रीड़ा (चौपड़)। नल, युधिष्ठिर, शकुनि इस कला में निपुण थे।

(7) आसनों द्वारा सूरत क्रीड़ा का ज्ञान।

इन सात कलाओं का उल्लेख 'गन्धर्व वेद' में भी किया गया है।

(8) विविध प्रकार के मकरन्दों (पुष्प रस) से आसव, मद्य आदि का निर्माण।

(9) शल्य कला - अंग में चुभे कांटे की पीड़ा को कम करना, निकालना, फोड़े आदि की चीर फाड़ करना।

(10) हींग आदि रस (मसालों) से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों को पकाना।

(11) वृक्ष, गुल्म, लता आदि को लगाने, उनमें विविध प्रकार के फल, पुष्पों को उत्पन्न करने एवं उन वृक्षादि का अनेक उपद्रवों से संरक्षण करने की कृति।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में सुरम्य, उद्यान, उपवन आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण, अग्नि पुराण, शुक्रनीति सार में इस विषय पर बहुत सामग्री है। प्राचीन काल में यह कला उन्नत दशा में थी।

(12) पत्थर, सोने, चाँदी आदि धातुओं को खान में से खोदना, उन धातुओं की भस्म बनाना।

(13) इक्षु (गन्ना) से बनाये जा सकने वाले पदार्थ जैसे- राब, गुड़, खांड, चीनी, मिश्री आदि बनाने का ज्ञान।

(14) अनेक धातु और अनेक औषधियों को परस्पर मिश्रित करने का ज्ञान।

(15) मिश्रित धातुओं को मिश्रण से अलग-अलग कर देना।

(16) धातु आदि के मिश्रण का अपूर्व (प्रथम) विज्ञान।

(17) लवण (नमक) आदि को समुद्र या मिट्टी से निकालने का विज्ञान।

क्रमांक 8 से 17 तक की दस कलाओं का सम्बन्ध आयुर्वेद से है। इनमें आधुनिक बॉटनी, हॉर्टीकल्चर, माइनिंग, मेटलर्जी, केमेस्ट्री आदि आ जाते हैं।

(18) पैर-हाथों के विशिष्ट सञ्चालनपूर्वक (पैतरा बदलते हुए) शस्त्रों का लक्ष्य स्थिर करना और उनको चलाना।

(19) शरीर की सन्धियों (जोड़ों) पर आघात करते हुए या भिन्न-भिन्न अंगों को खींचते हुए दो मल्लों (पहलवानों) का युद्ध (कुश्ती)।

इस कला में भारत प्राचीन काल से श्रेष्ठ रहा है। श्रीकृष्ण ने कंस की सभा में चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों को इसी कला में पछाड़ा था। हनुमान जी की मल्ल युद्ध में प्रवीणता का उदाहरण रामायण में आया है। भीमसेन और जरासन्ध की कुशती का उल्लेख महाभारत में है।

- (20) कृत और प्रतिकृत आदि अनेक तरह के अति भयंकर बाहु प्रहारों से अकस्मात् शत्रु पर झपटकर किये गये आघात को 'निपीड़न' कहते हैं। शत्रु द्वारा किये गये ऐसे 'निपीड़न' से अपने को बचा लेने का नाम 'प्रतिक्रिया' है अर्थात् अपना बचाव करते हुए शत्रु पर बाहुओं से भयंकर आघात करते हुए युद्ध करना।
- (21) अभिलक्षित निशाने पर विभिन्न यन्त्रों से शस्त्रों को फेंकना और किसी वाद्य के संकेत से व्यूह रचना करना।
- (22) हाथी, घोड़े और रथों की विशिष्ट गतियों से युद्ध का आयोजन करना। क्रमसंख्या 18 से 22 तक की कलाएँ 'धनुर्वेद' से सम्बन्ध रखती हैं।
- (23) विविध आसनों एवं मुद्राओं से देवताओं को प्रसन्न करना।
- (24) सारथ्य - रथ हाँकने का काम एवं हाथी घोड़ों को अनेक तरह की गतियों (चालों) की शिक्षा देना। वर्तमान युग में वाहन संचालन (Driving) आधुनिक स्वरूप हो सकता है।
- (25) मिट्टी, लकड़ी, पत्थर और पीतल आदि धातुओं से बर्तन बनाना।
- (26) चित्रों का आलेखन। चित्रकला के छः अंग - 1. रूप भेद (रंगों को मिलाना), 2. प्रमाण (चित्र में दूरी, गहराई आदि का दिखलाना और चित्रगत वस्तु के अंगों का अनुपात) 3. भाव और लावण्य की योजना, 4. सादृश्य अर्थात् एक के समान दूसरा बनाना, 5. वर्णिका (रंगों का सामंजस्य) 6. भंग (रचना कौशल)। 'समराङ्गसूत्रधार' आदि प्राचीन शिल्प ग्रन्थों में इस कला का विशदरूप से विवरण उपलब्ध है।
- (27) तालाब, बावड़ी, कूप, महल आदि का बनाना और भूमि का सम करना। (सिविल इंजीनियरिंग)
- (28) घटी (घड़ी) आदि समय का निर्देश करने वाले यंत्रों का निर्माण करना (जल यंत्र, बालुका यंत्र, धूप घड़ी)

प्राचीन राजाओं की ड्योढ़ी पर जल यंत्र, बालुका यंत्र या धूप घड़ी के अनुसार घण्टा बजाने की प्रथा थी। इन्हीं यंत्रों की सहायता से प्राचीन ज्योतिषी लोग समय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग का ज्ञान कर लिया करते थे।

- (29) अनेक वाद्यों का निर्माण करना।

- (30) रंगों के संयोग से बने विभिन्न रंगों से वस्त्र आदि वस्तुओं का रंगना (यह कला घर-घर में भी तथा इन वस्त्रों की विदेशों में बड़ी माँग थी।)
- (31) जल, वायु और अग्नि के संयोग से उत्पन्न वाष्प (भाप) के निरोध (रोकने) से अनेक क्रियाओं का सम्पादन करना। “जलवाय्वग्निसंयोगनिरोधैश्च क्रिया कला।” भोजदेव (वि.सं० 1066-68) कृत ‘समराङ्गण सूत्रधार’ के 31वें अध्याय का नाम ‘यन्त्र विधान’ है। उसमें 223½ श्लोक हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में माप के यंत्रों का ज्ञान था और वे इन यंत्रों की आज की तरह सहायता लिया करते थे।
- (32) नौका, रथ आदि आवागमन के साधनों का निर्माण करना।
- (33) सूत, सन आदि तंतुओं से रस्सी बनाना।
- (34) अनेक तंतुओं से पटबन्ध (वस्त्र रचना) की कला। यह कला प्राचीन भारत में उन्नत दशा में थी। भारत में “ईस्ट इण्डिया कम्पनी” के शासन के पहले यहाँ ऐसे सुन्दर, मजबूत, बारीक वस्त्र बनाये जाते थे, जिसकी बराबरी आज तक कोई दूसरा देश नहीं कर सका। ‘ईस्ट इण्डिया कम्पनी’ के समय में यहाँ के वस्त्र निर्माण एवं वस्त्र निर्यात के व्यवसायों को उन्होंने नष्ट कर दिया।
- (35) रत्नों की पहचान और उनमें वेध (छिद्र) करने की कला।
- (36) सुवर्ण, रजत आदि के यायात्म्य (असलीपन) की पहचान।
- (37) नकली सोने-चाँदी और हीरे-मोती आदि रत्नों का निर्माण करने का विज्ञान।
- (38) सोने-चाँदी के आभूषण बनाना, लेप व मीनाकारी करना।
- (39) चमड़े को मुलायम करना और उससे आवश्यक उपयोगी सामान तैयार करना।
- (40) मृत पशुओं के शरीर पर से चमड़ा निकालकर अलग करना।
- (41) गौ, भैंस आदि को दुहने से लेकर दही जमाना, मथना, मक्खन निकालना तथा उससे घी बनाने तक की क्रिया।
- (42) कपड़ों को सीना। ‘सीवने कञ्चुकादीनां विज्ञानं तु कलात्मकम्।’
- (43) जल में विविध प्रकार से तैरना तथा डूबते हुए को बचाना।
- (44) घरों के बर्तनों को माँजने का ज्ञान।
- (45) वस्त्रों का संमार्जन (अच्छी तरह धोकर साफ करना।)
- (46) क्षुर कर्म (हजामत बनाना)
- (47) तिल, तीसी आदि तिलहन पदार्थ से तेल निकालना।
- (48) हल चलाना।
- (49) पेड़ों पर चढ़ना।

- (50) मनोनुकूल सेवा करने का ज्ञान।
 - (51) बाँस, ताड़, खजूर, सन आदि के पात्र बनाना।
 - (52) काँच के बर्तन आदि सामान बनाना।
 - (53) जल से संसेचन (अच्छी तरह खेतों को सींचना)।
 - (54) जल का संहरण - अधिक जल वाली या दलदल वाली भूमि से जल को बाहर निकालना एवं जल को अन्य स्थान पर ले जाना।
 - (55) लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाने की कला।
 - (56) हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट की पीठ सवारी के उपयुक्त जीन/काठी बनाना।
 - (57) शिशु का पालन / संरक्षण।
 - (58) शिशुओं का पोषण करना।
 - (59) बच्चों के खेलने के लिए तरह-तरह के खिलौने बनाना।
 - (60) अपराधियों को अपराध के अनुसार ताड़न (दण्ड) देने का ज्ञान।
 - (61) लिपि को सुन्दरता से लिखना।
 - (62) पान की रक्षा करना कि वह सूखे नहीं, सड़े-गले नहीं।
- आगे के क्रमांक को सभी कलाओं का प्राण कहा गया है -
- (63) आदान
 - (64) प्रतिदान

किसी कार्य को करने में आशुकारित्व (शीघ्रता से करना) आदान कहा जाता है और उस काम को चिरकाल (बहुत समय) तक करते रहना प्रतिदान है।

6

सामान्य ज्ञान

7

हमारे राष्ट्रनायक

कोरोना काल के कारण
उपरोक्त दोनों अध्यायों
में से सत्र 2020-21 में
कोई भी प्रश्न नहीं पूछा
जाएगा।

अतः इन्हें हटा दिया
गया है।

प्रश्न-पत्र का स्वरूप (ब्लू प्रिंट) परीक्षा हेतु।

अंक विभाजन निम्नवत होंगे -

मातृभूमि भारत	16
वसुधैव कुटुम्बकम्	16
संस्कारों की पावन परम्परा	16
हमारा गौरवशाली इतिहास	10
भारतीय विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा	12
सामान्य ज्ञान	16
हमारे राष्ट्र नायक	14

प्रश्नों के प्रकार

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
 2. एक शब्द में उत्तर दें।
 3. माता, पिता, पति, पत्नी, गुरु, शिष्यों के नाम बताएँ।
 4. किसने कहा / किसने - किससे कहा।
 5. प्रश्न के शब्द से नाम, स्थान मिलायें।
 6. कौन किस स्थान से सम्बन्ध रखते थे / हैं?
 7. यह किनका उपाख्य नाम है?
 8. इसके प्राचीन/वर्तमान बताएँ।
- उपर्युक्त आधारित प्रश्नों के चार विकल्प होंगे।
 - इनमें से एक सत्य तीन असत्य होंगे।
 - प्रत्येक शीर्षक से निर्धारित अंकों के वस्तुनिष्ठ, बहुविकल्पीय प्रश्न ही होंगे।
 - सभी शीर्षकों से प्रश्न होना अनिवार्य होगा।

आलोक - सभी प्रश्न बहुविकल्पीय होंगे। दिये गये 4 विकल्पों में से एक सही विकल्प छाँट कर उत्तर पत्रक (OMR Sheet) में एक गोला काला करना होगा। गोला को सावधानीपूर्वक पूरा गहरा काला करें। कुल 50 प्रश्न 100 अंकों के होंगे उत्तीर्णता 50 प्रतिशत है।

भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान का विशेष आवरण कवर (लिफाफा)



Vidya Bharati Sanskriti Shiksha Sansthan, Kurukshetra has been engaged in the process of conservation and dissemination, as well as its transmission to the younger generation of the rich cultural heritage of India, including the great lineage of knowledge, traditions and life values since 1984; through organisation of programmes like Sanskriti Gyaan Pareeksha, Quiz contest, ex- tempore speech, storytelling, paper reading, essay competition, seminar, workshop, academic conferences and conclaves; and an Akhil Bharatiya Sanskriti Mahotsava, publication of books on various cultural and educational subjects and picture posters of our national and cultural heroes, freedom fighters and places of cultural significance, by means of which, the Sansthan has been able to reach to approximately 25 lakh children and teachers in each and every part of our country.

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र 1984 से कार्यरत है और देश की भावी पीढ़ी को अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर, अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान-विज्ञान तथा जीवन मूल्यों की जानकारी देने हेतु संस्कृति ज्ञान परीक्षा, प्रश्नमंच, कथा-कथन, आशु-भाषण, पत्राचार, निबंध लेखन, विद्या भारती संस्कृति महोत्सव, कार्यशालाओं, सम्मेलनों, विद्वत् संगोष्ठियों के आयोजन, चित्रा और पुस्तक प्रकाशन के कार्य कर रहा है। महात्मा गांधी जी की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में बाल साहित्य, चित्रा एवं संस्कृति ज्ञान परीक्षा के माध्यम से यह संस्थान लगभग 25 लाख विद्यार्थियों तक महात्मा गांधी जी की प्रेरणा पहुंचाने में सफल रहा है।



जारीकर्ता : मुख्य पोस्टमास्टर जनरल, हरियाणा परिमंडल, अम्बाला-133001
Issued by : Chief Postmaster General, Haryana Circle, Ambala - 133001

HR-18/2019

विशेष आभार: चीफ पोस्टमास्टर जनरल, हरियाणा सर्कल



प्रकाशक :

विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान

संस्कृति भवन, सलारपुर रोड, कुरुक्षेत्र-136118 (हरियाणा)

दूरभाष/फैक्स : 01744-251903, 270515

मोबाइल/व्हाट्सएप : 9812520301, 7419996400, 7419996300, 7419996200 www.sanskritisansthan.com

sgp@sanskritisansthan.org vidyabhartikurukshetra vidyabhartiss vbss kkr